जुलाई-सितम्बर 2014

अक्षर शिल्पी

सृजनात्मक अभिव्यक्ति की प्रमुख पत्रिका

राष्ट्रभाषा के आराधक

रोक सकी सम्पत्ति न घर की
और न बाहर की बाधा,
जियो सेठ गोविन्ददास तुम,
कठिन साध्य तुमने साधा।
राष्ट्र भारती के आराधक,
त्याग तथा तप के साधक।
पा जाता पूरा कृतित्व मैं
पाकर भी तुमसे आधा।

● राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

सेठ गोविन्ददास

सेठ गोविन्ददास की हिन्दी सेवा

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

• सप्रे संग्रहालय भोपाल से

जब कभी यह स्मरण किया जायेगा कि भारत की संविधान सभा ने हिन्दी को किस प्रकार संघ की राजभाषा स्वीकार किया तब इस संबंध में की गयी सेठ गोविन्ददास की सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकेगा। वर्ष 1949 में वे मेरठ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने थे और उस समय से उन्होंने हिन्दी को उसका उपयुक्त स्थान दिलाने के लिए अकथनीय प्रयास किया। परन्तु सेठ गोविन्ददास की हिन्दी सेवा का यह एक अंश है। यदि सेठजी ने यह न भी किया होता तो भी एक हिन्दी नाटककार, उपन्यास लेखक तथा अनेकों प्रसिद्ध दैनिक व मासिक पत्रों के प्रकाशक के रूप में सेठजी की सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता था। यह इसलिए और भी विस्मयकारी लगता है कि युवावस्था प्राप्त होते ही सेठजी राजनीति में आकंठ डूबे हुए थे और 1925 से लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त यानी 18 जून 1974 तक वे भारत की केन्द्रीय धारा सभा, संविधान सभा व लोकसभा के बराबर निर्वाचित सदस्य रहे। इसके बाद भी उन्होंने विभिन्न विधाओं पर सौ से ऊपर पुस्तकें लिखीं, अनेक संस्थाओं का संचालन किया, कई पत्र निकाले और हिन्दी प्रचार के लिए आन्दोलन करते रहे, यह अलग था।

इससे पहले कि हिन्दी को संविधान में स्थान दिलाने के उनके प्रयासों की हम चर्चा करें उनके साहित्यकार के स्वरूप को समझना आवश्यक है। वही प्रेरणा थी जिससे वे हिन्दी के दृढ़ प्रचारक बने। साथ ही यह स्मरण रखना होगा कि जबलपुर नगर के सबसे बड़े रईस राजा गोकुलदास के पौत्र और दीवान बहादुर जीवनदास के पुत्र श्री गोविन्ददास अपने परिवार की परम्पराओं से हटकर कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में आये थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू को जनवरी 1950 में एक अभिनंदन

ग्रंथ भेंट किया गया। इसका सम्पादन सेठ जी ने किया। उस समय पंडित नेहरू ने सेठजी का एक संस्मरण सुनाते हुए कहा था कि वे जब जेल में आये तो उन्हें लोटे से पानी डालना नहीं आता था इससे नहाते समय उनका सिर लोटे से टकरा गया था क्योंकि उनके घर पर उनके नौकर ही उन्हें स्नान कराते थे। परन्तु सेठजी को देशप्रेम था और हिन्दी की भक्ति जिसे उन्होंने अपनी रचनाओं में उतारा। उन्होंने अभी आत्मकथा, आत्म निरीक्षण में जो तीन जिल्दों में छपी लिखा है- 'मेरा जन्म हिन्दीभाषी परिवार में हुआ था इसलिए माँ के दूध के साथ हिन्दी मेरे व्यक्तित्व का अंश बनने लगी।'

सेठ गोविन्ददास किस भारत की कल्पना करते थे उसको समझने के लिए उनके नाटक 'शेरशाह' पर दृष्टि डालना जरूरी है। 'शेरशाह' कहता है- 'मैं चाहता हूँ कि इस मुल्क में हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर एक बाहरी कौम का मुकाबला करें। फिर यह काम यहाँ के सुलतानों और राजाओं पर ही न छोड़ा जाये, बल्कि यहाँ की आम रियाया को भी इस काम में शामिल किया जाये।' शेरशाह अपने बारे में कहता है- 'मैं हूँ हिन्दी, इसी मुल्क में पैदा हुआ। यहाँ की आबोहवा में पला, यहाँ की मिट्टी से बना और इसी मिट्टी में मिलूँगा। यहाँ से बाहर देखने के लिए मेरे पास कुछ नहीं। हिन्दुस्तान ही मेरे लिए सब कुछ है। यहाँ के रहने वाले चाहे वह किसी भी मजहबी मिल्लत के हो, मेरे भाई बिरादर है।'

यह संदेश था जो सेठ गोविन्ददास अपने नाटकों से दे रहे थे। उनका एक नाटक है- 'कुलीनता'। उसे वर्ण व्यवस्था पर चोट कर कर्म की श्रेष्ठता पर जोर दिया है और जन्म से कुलीनता का। सेठजी ने अनेक ऐतिहासिक नाटक और कभी तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा नहीं है। इसी प्रकार के उनके नाटक हैं- अशोक, हर्ष, शशि गुप्त। उन्होंने वर्तमान समस्याओं पर भी नाटक लिखे जैसे प्रकाश, सेवापथ, सिद्धांत स्वातंत्र्य, बड़ा पापी कौन, हिंसा या अहिंसा, गरीबी या अमीरी पाकिस्तान आदि। इन नाटकों के द्वारा उस समय के समाज की समस्याओं और उनकी विकृतियों पर बड़ा प्रकाश डाला गया है। यही कारण है हिन्दी के नाटककारों में भी जयशंकर प्रसाद के बाद के नाटककारों में सेठ गोविन्ददास को मूर्धन्य नाटककारों में माना गया हैं।

यद्यपि सेठजी की मुख्य विधा नाटक व एकांकी थे जो 1939 से चर्चित होने लगे थे उनके उपन्यास भी उस समय के समाज और उसकी समस्याओं का बड़ा सही चित्रण करते हैं। उनका 'इन्दुमती' उपन्यास बड़ा वृहद है और 1916 से बाद के भारत की सामाजिक व मनोवैज्ञानिक स्थिति का सजीव चित्रण है। इसे सामाजिक उपन्यासों में नया प्रयोग माना गया था।

हिन्दी पत्रकारिता के उन्नयन में भी सेठ गोविन्ददास का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं। उनकी प्रेरणा तथा प्रदत्त साधनों से जबलपुर से 'दैनिक लोकमत' व 'श्री शारदा' तथा 'सारथी' जैसे दो मासिक पत्र भी मध्य प्रदेश की जनता को दिये। इनका सम्पादन श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र, श्री नर्मदा प्रसाद मिश्र तथा श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव ने किया और जबलपुर को साहित्य तथा ज्वलंत पत्रकारिता का केन्द्र बना दिया। सन् 1946 से सेठजी ने जबलपुर से ही दैनिक 'जयहिन्द' का प्रकाशन किया और घाटा सहकर भी उसे नौ वर्ष चलाया।

हिन्दी की सेवा के लिए अपना तन, मन और धन अर्पण करने की यह भावना ही थी कि जब संविधान सभा में हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रश्न आया तो राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन के नेतृत्व में सेठ गोविन्ददास जी ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। •

सेठ गोविन्ददास : हिन्दी के आराधक

सेठ गोविन्ददास ऐसे लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी नाटककार हैं जिन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कार्यों को आगे बढ़ाते हुए नाट्य शिल्प की नयी परम्पराओं की नींव रखी। हिन्दी नाट्य कला में पूर्व और पश्चिम का समाहार कर उसे एक सही और सन्तुलित मोड़ दिया। राजनीति और साहित्य की समानान्तर पगडण्डियों पर चलते हुए उन्होंने एक ओर अपूर्व त्याग और साहस के साथ स्वाधीनता-संग्राम की लड़ाई के दौरान 'कौशल केसरी' की उपाधि प्राप्त की तो दूसरी ओर अपने विशद साहित्य-सृजन के कारण वे सरस्वती के सच्चे आराधक कहलाये।

सेठ गोविन्ददास का जन्म सन् 1896 में दशहरे के दिन जबलपुर, मध्यप्रदेश के एक वैभव-सम्पन्न घराने में हुआ और निधन 18 जून, 1947 को। सेठजी के व्यक्तित्व में प्रारम्भ से ही विनम्रता थी। इन्हीं गुणों का ही प्रताप था कि उन्होंने पुरखों की कमाई, शानो-शौकत, अथाह धन-सम्पदा और ठाठ-बाट को ठोकर मार दी। खाली हाथ हो, कर्मरत होकर, संघर्ष करते हुए अपनी दिशा आप निर्धारित की।

राजनीति में 'तपा हुआ खरा सोना' बनकर चमकनेवाले गोविन्ददासजी एक तरफ स्वाधीनता-संग्राम में अपनी सक्रिय हिस्सेदारी निभा रहे थे, जेल-जीवन की यंत्रणाएँ झेल रहे थे तो दूसरी ओर हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध कर रहे थे। इसीलिए स्वाधीनता आन्दोलन की जागरूकतामयी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना ने उनके साहित्य में भी अभिव्यक्ति पायी। राष्ट्रीय चेतना के उन्मेष में ही इतिहास की नयी व्याख्या प्रस्तुत हुई। बांग्ला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की तरह उनके नाटकों में भी राष्ट्रीय चेतना जातीय अस्मिता से मानवतावाद तथा विश्व बन्धुत्व की

कुमुद शर्मा

• हिन्दी के निर्माता से साभार

ओर बढ़ी है।

महलों के वैभव में पलनेवाले सेठजी ने स्कूली अध्ययन के स्थान पर घर पर ही उच्च कोटि के शिक्षकों से अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा पायी। बचपन से ही उनमें साहित्यिक अभिरूचि विद्यमान थी। देवकीनन्दन खत्री की रचनाएँ पढ़कर, उनसे प्रेरित हो उन्होंने बारह वर्ष की उम्र में ही 'चम्पावती' नाम से एक तिलिस्मी उपन्यास की रचना की। अल्पावस्था में ही उन्होंने 'जन्मभूमि प्रेम' आदि स्फुट कविताओं के साथ-साथ 'बाणासुर पराभव' नामक महाकाव्य भी रच डाला, लेकिन वह अपूर्ण है। पारसी नाटक कम्पनियों के नाटकों को देखकर तथा बांग्ला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों को पढ़कर उन्हें नाट्य लेखन की प्रेरणा मिली। सेठजी की प्रमुख रचनाएँ तथा अन्य कृतियाँ इस प्रकार हैं- नाटक- 'विश्वप्रेम', 'कर्तव्य', 'कर्ण', 'हर्ष', 'कुलीनता', 'विश्वासघात', 'शशिगुप्त', 'शेरशाह', 'अशोक', 'सिंहलद्वीप', 'विजयबेलि', 'भिक्षु से गृहस्थ और गृहस्थ से भिक्षु', 'प्रकाश', 'सेवापथ', 'दुःख क्यों?', 'गरीबी या अमीरी', 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य', 'दलित कुसुम', 'स्पर्द्धा', 'भूदान', 'पाकिस्तान', 'पतित सुमन', 'महत्त्व किसे', 'बड़ा पापी कौन?', 'त्याग या ग्रहण', 'हिंसा या अहिंसा', 'प्रेम या पाप', 'संतोष कहाँ', 'सुख किसमें', 'विकास', 'नवरस'। एकांकी संग्रह- 'सप्तरश्मि', 'अष्टदल', 'एकादशी', 'पंचभूत', 'चतुष्पथ'। जीवनी नाटक- 'रहीम', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'महाप्रभु वल्लभाचार्य', 'महात्मा गांधी'। यात्रा- 'हमारा प्रधान उपनिवेश', 'सुदूर दक्षिण-पूर्व', 'पृथ्वी की परिक्रमा'। उपन्यास- 'इन्दुमती'। आलोचना- 'नाट्य कला मीमांसा'। इतिहास- 'अंग्रेजों का आगमन और उसके बाद', 'प्राचीन कश्मीर की एक झलक'। अन्य- 'मेरे जीवन के विचार स्तम्भ', 'आत्म-निरीक्षण।'

सेठजी ने पौराणिक, ऐतिहासिक तथा अपनी समसामयिक परिस्थितियों से अपने नाटकों की विषय सामग्री का चयन किया। पौराणिक व ऐतिहासिक विषयों, चरित्रों और आदर्शों में आधुनिकता की तूलिका से नये रंग भरे। सामयिक जीवन को प्राचीन चित्रों से संस्कारित किया। उनके सामयिक नाटक सामयिक समस्याओं के मूल उत्स तक पहुँचने और पहुँचाने की ऐतिहसिक दृष्टि देते हैं और पौराणिक व ऐतिहासिक नाटक राष्ट्रीय चेतना के रंग को गहराते हैं।

सेठजी ने समस्या नाटकों के अलग खाँचे को अस्वीकार करते हुए समस्या को नाटकीय वस्तु का अपरिहार्य अंग माना है। उनकी दृष्टि से समस्या या विवादास्पद विचार के बिना नाटक आगे नहीं बढ़ता। सेठजी के पौराणिक, ऐतिहासिक नाटकों में कभी न समाप्त होने वाली समस्याएँ मौजूद हैं। सामाजिक नाटकों में आधुनिक समाज की जीती-जागती तस्वीर के साथ किसी-न-किसी स्थायी समस्या का प्रावधान है। हिन्दू-मुस्लिम समस्या, किसान-जमींदार का द्वन्द्व, अस्पृश्यता की समस्या, हिंसा-अहिंसा का द्वन्द्व उनके नाटकों में सामयिकता के साथ उभरता है।

सेठजी के नाटकों की एक खासियत यह भी है कि उनकी कथावस्तु में यथार्थ व आदर्श के समन्वित रूप उपस्थित हैं। गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव से उनमें आदर्शवाद का रंग है, लेकिन वह यथार्थ से असम्बद्ध नहीं है। इस सन्दर्भ में उनकी मान्यता थी कि 'मैं सदा आदर्शवादी ही रहा, पर आदर्शवाद में जो अस्वाभाविकता आ जाती है वह मुझे मान्य नहीं। इसलिए इब्सन का स्वाभाविकतावाद मुझे सदा रूचिकर रहा, जिसके भीतर आदर्शवाद लहरें लिया करता है, जिसकी पोशाक रहती है यथार्थवादी।' दरअसल सेठजी मनोविनोद तथा युगानुकूल जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना को नाटक का वांछनीय और लोकानुरंजन तथा लोक कल्याण की समन्वयात्मक दृष्टि-नियोजना को उसका आत्यन्तिक प्रयोजन मानते थे।

सेठजी के नाटकों में जयशंकर प्रसाद की भाँति पात्रों के आन्तरिक संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व तथा दुःखान्त मोड़ों पर पाश्चात्य प्रभाव की झलक है। लेकिन यह पाश्चात्य प्रभाव सीधे न आकर बांग्ला नाटकों के माध्यम से आया। इसलिए उनमें भारतीय धरातल कहीं भी नहीं छूटता है। टेकनीक की

दृष्टि से भी सेठजी ने नये-नये प्रयोग किये। उन्होंने मोनोड्रामा भी लिखे।

यद्यपि नाटककार के रूप में ही सेठजी ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की, लेकिन उनकी औपन्यासिक कृति 'इन्दुमती' तथा यात्रा संबंधी पुस्तकों में 'पृथ्वी परिक्रमा' भी कम चर्चित नहीं है। 'इन्दुमती' उपन्यास 'व्यावहारिक ज्ञान का कोष' कहलाया तो 'पृथ्वी परिक्रमा' को लोकसभा अध्यक्ष स्वर्गीय श्री मावलंकर ने 'विश्व इतिहास का एक ठोस भाग' माना।

साहित्य-सृजन के अतिरिक्त भी सेठजी ने हिन्दी भाषा व साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य किये। उन्होंने 'शारदा भवन पुस्तकालय' की स्थापना की। 'राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर', 'श्री शारदा', 'शारदा पुस्तकमाला', और दैनिक 'लोकमत' का प्रकाशन किया। अपनी हिन्दी निष्ठता के कारण वे दो बार उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तथा एक बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

सेठ गोविन्ददास के नाटकों की अपनी दृष्टि व दिशा है। उन्होंने हिन्दुस्तानी समाज की अभावात्मक स्थितियों को भी उकेरा और उसके विकास के रूख को भी पहचाना। 'कौशल केसरी' की हिन्दी आराधना, अभूतपूर्व त्याग, संघर्ष और देशप्रेम अविस्मरणीय हैं। •

कविता

आनन्द तिवारी पौराणिक

सुधियों में तुम...

पसरती जब तन्हाईयाँ
सिमट जाती सब दूरियाँ
हवाओं में छिड़ते तरन्नुम
सुधियों में होती बस तुम
मलयगन्ध अन्तस छू जाता
विगत, वर्तमान बन जाता
लौट पड़ती समय की सुईयाँ
सजती प्यारी गलबहियाँ
होते हम-तुम, शेष गुम
सुधियों में होती बस तुम
फलक भरा मादक वह क्षण
नेह का पावन समर्पण
खामोशियों की अनुगूँज
चातक के खातिर स्वाति बूँद
सुन रहा पगध्वनि गुमसुम
सुधियों में होती बस तुम
झिलमिल नदी, चमकते प्यारे
अस्फुट स्वर में गीत थिरकते
सपने अनदेखे महकते
चमकता तुम्हारी माँग का कुमकुम
सुधियों में होती बस तुम... •

• श्री राम टाकीज मार्ग, महासमुन्द (छ.ग.) 493 445

हिन्दी के सजग प्रहरी : सेठ गोविन्ददास

गजानन्द गुप्त

जब पराधिनता के पाश में बंधा भारत रूढ़ियों, असंगतियों, अन्ध विश्वासों और दुख-दारिद्रय के अध:पतन पर पहुँच चुका था, मध्यप्रदेश के जबलपुर शहर के सुविख्यात राजा गोकुलदास के पुत्र दीवान बहादुर जीवन दास के यहाँ सेठ गोविन्ददास का जन्म विजयदशमी को दिनांक 16-10-1896 को हुआ। पितामह गोकुलदास के धर्मप्राण और सुसंस्कृत व्यक्तित्व का सेठजी पर विशेष प्रभाव पड़ा। उन्हीं के संरक्षण में सेठजी के अध्ययन की व्यवस्था थी। घर पर ही अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा मिली। बचपन से ही रेनाल्ड्स और बाबू देवकीनन्दन खत्री की रचनाएँ पढ़ी और तिलस्मी उपन्यास लिखने की रूचि हुई। बारह वर्ष की अवस्था में एक तिलस्मी उपन्यास 'चम्पावती' की रचना की। शुरू से ही वल्लभ सम्प्रदाय के उत्सवों, रामलीला आदि में आपकी रूचि थी। इन्हीं से नाटक रचना की ओर प्रवृत्ति हुई। सन् 1916 में शारदा भवन पुस्तकालय की स्थापना, श्री शारदा साहित्य मासिक पत्रिका के प्रकाशन और शारदा पुस्तकमाला के प्रारम्भ से साहित्यिक क्षेत्र में व्यवस्थित कार्य प्रारम्भ किया। आपने सन् 1919 में पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव के लिए 'विश्वप्रेम 'नाटक लिखा और मंचित किया।

सेठ गोविन्ददास जी ने अपने सार्वजनिक जीवन के सूत्रपात के साथ सर्वप्रथम साहित्यिक क्षेत्रों और उसके बाद भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेकर इस गौरव अभियान में अपने को अर्पित कर दिया। महात्मा जी के नेतृत्व में उन्होंने अपने प्रदेश में न केवल एक स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिक के रूप में, वरन् प्रान्त के तरूण नेता के रूप में नेतृत्व करते रहने के कारण, वे सरकार द्वारा प्रान्त के प्रथम अपराधी माने जाने लगे और परिणाम में उन्हें विभिन्न जेल-यात्राओं और उनकी अगणित यातनाओं का शिकार बनना पड़ा। आपने अपने जीवन के आठ वर्ष जेल-यातनाओं में व्यतीत किये।

विश्व के लोकतंत्रीय इतिहास के पचास वर्षों तक धारासभा, लोकसभा के अजेय सदस्य के रूप में जबलपुर क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते रहे।

लोकसभा का गठन होने पर कार्यकारी प्रथम लोकसभा अध्यक्ष का गौरव

● विवरण पत्रिका अक्टूबर 2009 से साभार
दुर्गा सदन, 19-3-946 शमशीरगंज,
हैदराबाद-500053 (आं.प्र.)

उन्हें चार बार प्राप्त हुआ। इसी कारण आपको संसद का पिता कहा जाता था। संसदीय जीवन की अर्ध-शती पूर्ण करने पर सन् 1973 में सेठ जी को लोकसभा एवं राज्यसभा सदस्यों की संयुक्त बैठक में सम्मानित किया गया।

सेठ जी के सार्वजनिक जीवन, उनकी सेवाओं और उनके व्यक्तिगत विशिष्ट गुणों के कारण सन् 1961 में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया था तथा साहित्यिक क्षेत्र में उनकी सेवाओं के लिए विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट की और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने साहित्य वाचस्पति की उपाधि प्रदान की। सन् 1957 में उनकी षष्ठी पूर्ति पर सारे देश में हीरक जयन्ती मनाई गई थी। हीरक जयन्ती का केन्द्रीय समारोह नयी दिल्ली में आयोजित किया गया था, जहाँ प्रधान मंत्री पं. नेहरू जी ने एक बड़े भव्य समारोह के बीच सेठजी को एक वृहद् अभिनन्दन ग्रन्थ अर्पित किया था। उत्तर प्रदेश सरकार ने आपकी हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य में दस हजार रूपये का पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया। राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर ने अपनी सर्वश्रेष्ठ उपाधि 'मनीषी' सेठजी को प्रदान कर अपना गौरव बढ़ाया।

विदेशी यात्राओं में उनकी सबसे प्रमुख यात्रा सन् 1952 में हुई। जब उन्होंने एक प्रकार से पृथ्वी की परिक्रमा ही कर डाली। जिन देशों में वे इस यात्रा में गए थे वे मिस्र, यूनान, स्विजरलैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड, कैनेडा, अमेरिका, हवाई-द्वीप, जापान, चीन, श्याम और बर्मा थे।

सन् 1963 में लोकसभा में राजभाषा संशोधन विधेयक का आपने पूरे जोर से सशक्त रूप में विरोध किया। आप एकमात्र कांग्रेसी सांसद थे जिन्होंने उस विधेयक का विरोध किया था। पं. नेहरूजी ने अपने दो दूतों को सेठ जी के घर पर भेजा, वे सो गए थे, उन्हें जगाया गया। दूतों ने उनको समझाया कि आप राजभाषा संशोधन विधेयक का विरोध तो कर ही चुके किन्तु मतदान में आप अपना मत उसके विरोध में दें ऐसा नेहरू जी का अनुरोध है। सेठजा की पत्नी के अतिरिक्त उनका पूरा परिवार चाहता था कि नेहरू जी के अनुरोध का पालन हो किन्तु सेठ जी ने अपनी अर्न्तआत्मा की आवाज का पालन करते हुए राजभाषा संशोधन विधेयक के खिलाफ अपना मत देने वाले एक मात्र कांग्रेसी सांसद थे। आप राजभाषा संशोधन विधेयक के पारित होने पर बहुत दुःखी हुए और राष्ट्रपति द्वारा दिया गया अलंकृत 'पद्मभूषण' भी वापस लौटा दिया।

राजनीतिक क्षेत्र में की गई सेठ जी की सेवाओं एवं उपलब्धियों का यदि लेखा-जोखा और मूल्यांकन किया जाए तो यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने अपने तन,मन और धन से मनसा, वाचा और कर्मणा से राष्ट्र की सेवा की। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जब यथार्थ राजनीति शुरू हुई तब सेठजी दल-प्रपंच पूर्ण राजनीति की कसौटी पर अपने को प्रमाणित न कर सके। वे तो मूलतः साहित्यकार थे। साहित्यकार में मात्र साधना की, सृजन की और संगठन की शक्ति काम करती है, जबकि राजनीतिज्ञ के मन में विघटन और विनाश के बीज भी साथ-साथ वास करते हैं। यही कारण है कि साधक और साहित्यकार के रूप में जो सेठ जी साहित्य जगत के सिरमौर बन सके, वही राजनीतिक जगत में अपनी दीर्घकालीन सेवाओं के बाद भी अपना कोई राजनीतिक स्थान नहीं बना पाये।

साहित्य क्षेत्र में सेठ जी की उपलब्धियाँ उनका कृतित्व है, जो वृहद् परिणाम में साहित्य की विभिन्न विधाओं के द्वारा भारतीय साहित्य जगत की श्रीवृद्धि कर रहा है। उन्होंने एक सौ ग्यारह एकांकी नाटक लिखे। 'इन्दुमती' नामक एक वृहद् उपन्यास लिखा, इसके अतिरिक्त एक महाकाव्य, तीन खण्ड काव्य, यात्रा साहित्य, आत्म-कथा, गांधी युग पुराण तथा निबन्धों आदि का विपुल साहित्य है जो उनके बुद्धि जीवी कर्मठ जीवन का प्रमाण बन गया। सेठजी ऐसे साहित्यकार नहीं, जो मातृभूमि के स्वाधीनता-अभियान के समय घर बैठे अपना कलम कुल्हाड़ा चलाते रहे। उन्होंने उम्र, वक्त अपने प्राथमिक कर्त्तव्य का पालन किया। फिर भी अपने मूल साहित्यकार धर्म के पालन में वह इस संक्रमणकाल में भी नहीं चूके। इसका प्रमाण उनकी जेल यात्राओं में लिखा गया उनका अधिकांश नाट्य साहित्य है।

इस हिन्दी से सजग प्रहरी का दिनांक 18-06-1974 को स्वर्गवास हो गया। •

साहित्य वाचस्पति डॉ. सेठ गोविन्ददास जी का उद्घाटन भाषण

उपस्थित बहनों और भाइयों...!

मैं आपको इस बात के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन का उद्घाटन करने की आपने मुझसे सेवा लेने की कृपा की है।

हिन्दी की प्रमुख संस्थाएँ :

वाराणसी की नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी की सबसे पुरानी संस्था है। नागरी प्रचारिणी सभा ने ही सन् 1910 में अपने प्रांगण में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की। सम्मेलन के उस प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष थे भारतीय संस्कृति के इस काल के सबसे बड़े पूजक महामना पं. मदनमोहनजी मालवीय। इसके बाद सम्मेलन ने महात्मा गांधी की प्रेरणा से दक्षिण में हिन्दी का कार्य करने के लिए दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की। तदुपरांत उत्तर भारत के जिस क्षेत्र की मातृभाषा हिन्दी नहीं वहाँ हिन्दी का कार्य करने के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई। हिन्दी भाषी राज्यों में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली और हरियाणा में प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन बने। बंबई और कलकत्ते में भी इस प्रकार के सम्मेलनों की स्थापना का प्रयत्न किया गया जो सफल नहीं हुआ। शायद विदर्भ ही ऐसा अहिन्दी भाषी राज्य है जहाँ कुछ समय से विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन सफलतपूर्वक चल रहा है। इसका प्रधान कारण कदाचित यह है कि पुराने मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर थी। पुराने मध्यप्रदेश का अधिक भाग हिन्दी भाषी था, और नागपुर प्रधानत: मराठी भाषी होते हुए भी नागपुर में बहुत समय तक मध्यप्रदेश का हिन्दी साहित्य सम्मेलन रहा। नागपुर में मोर भवन के सदृश हिन्दी का एक विशाल भवन भी निर्मित हुआ। इस संबंध में श्री ब्रजलाल

डॉ. सेठ गोविन्ददास जी

• विदर्भ हिंदी साहित्य सम्मेलन, द्वितीय अधिवेशन, वर्धा

जी बियाणी का नाम सदा अमर रहेगा।

संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाएँ :

दक्षिण भारत की चार भाषाओं को छोड़कर आधुनिक काल की समस्त भारतीय भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं। दक्षिण की तमिल भाषा के अतिरिक्त तैलुमू, कन्हड और मलयालम तीन भाषाओं में संस्कृत के शब्द प्रचुर परिमाण में हैं। तमिल में भी 20 से 30 प्रतिशत शब्द संस्कृत से आये हैं। अत: सभी आधुनिक भारतीय भाषाएँ बहिनें हैं। सभी का आपस में घनिष्ठ संबंध है, मराठी और हिन्दी का तो सबसे अधिक। इसका प्रमुख कारण यह है कि हिन्दी और मराठी दोनों बंगला दो भाषाओं और इन भाषाओं के साहित्य की सबसे अधिक ऋणी है। मराठी और बंगला भाषी ऐसे अनेक साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने हिन्दी में उत्कृष्ट साहित्य रचना की।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर अहिन्दी भाषियों ने प्रतिष्ठित किया :

हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आधुनिक भारत के अहिन्दी भाषियों ने प्रतिष्ठित किया। आधुनिक भारत का सबसे पहिले नेतृत्व किया बंगाल ने। बंगाल के राजाराममोहनराय आधुनिक भारत के सबसे पहिले नेता हैं। उन्होंने इस बात को महसूस किया कि भारत को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है। और वह हिन्दी ही इसलिए हो सकती कि वह लगभग आधे भारतीयों की मातृभाषा है और देश में सर्वत्र समझी जाती है। राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज नामक एक संस्था की स्थापना की थी। उनके बाद ब्रह्म समाज के अध्यक्ष हुए श्री केशवचन्द्र सेन। केशव बाबू ने हिन्दी के संबंध में वही बात कही जो राजसाहब ने कही थी। इस बात को शायद बहुत कम लोग जानते हैं कि पूज्य स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज के प्रमुख ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश को हिन्दी में श्री केशवचन्द्र सेन के कहने से लिखा। स्वामीजी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। वे सत्यार्थ प्रकाश को संस्कृत में लिखना चाहते थे। केशव बाबू ने उनसे कहा कि संस्कृत के प्रति हमारी बड़ी पूज्य भावना रहनी चाहिए। परंतु यदि आप चाहते हैं कि आज आपके सिद्धांतों का जन साधारण में प्रचार हो तो वह हिन्दी के द्वारा ही हो सकता है। उस समय केवल बंगला साहित्य के नहीं परंतु समस्त भारतीय साहित्य के जाज्वल्यमान रत्न थे। श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय उन्होंने हिन्दी का भरपूर समर्थन किया। बंगाल से आधुनिक भारत का नेतृत्व गया महाराष्ट्र। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने हिन्दी का वैसा ही पक्ष लिया जैसा बंगाल के नेताओं ने लिया था। महाराष्ट्र से नेतृत्व पहुँचा गुजरात। गांधीजी ने हिन्दी के लिए जो कुछ कहा और किया वह हिन्दी के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। इस प्रकार स्वतंत्रता के पहिले ही अहिन्दी भाषियों के प्रयत्न से हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई।

संविधान सभा में हिन्दी सर्वमत से राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई :

स्वतंत्र भारत की संविधान सभा में जो भाषा राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी उसे सर्वमत से राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अभी भी कुछ अंग्रेजी पत्र और अंग्रेजी के समर्थक महानुभाव यह कहते जा रहे हैं कि संविधान सभा में तो हिन्दी को राजभाषा के पद पर केवल एक सदस्य के बहुमत से स्थापित किया गया। संविधान सभा की छपी हुई सरकारी कार्यवाही मौजूद है। उसमें देख लिया जाए कि सही बात क्या है।

क्या हिन्दी का कोई वास्तविक विरोध है ?

कहा जाता है आज तो हिन्दी का बड़ा विरोध हो गया है, और यह अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में तथा सबसे अधिक दक्षिण भारत में। हम जरा देखें कि इस बात में कहाँ तक सत्य है। दक्षिण भारत के चार राज्यों में आन्ध्र, मैसूर और केरल में हिन्दी का कोई विरोध नहीं, केवल मद्रास में याने तामिलनाडु में। इस राज्य के हिन्दी विरोध की चर्चा हम बाद में करेंगे, पहिले शेष अहिन्दी भाषी क्षेत्रों को लें। कश्मीर, पंजाब, असम, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात सब हिन्दी के समर्थक। बंगाल ने तो सर्वप्रथम हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की बात कही थी। बीच में बंगाल में हिन्दी का कुछ विरोध हो गया था पर अब वहाँ

कोई विरोध नहीं रहा है।

अब हम तामिलनाडू को लेते हैं। यदि ध्यान से देखा जाए तो तामिलनाडू का हिन्दी विरोध राजनैतिक कारणों से है और वहाँ के राजनेताओं के अतिरिक्त वहाँ की जनता हिन्दी की विरोधिनी नहीं है। तामिलनाडू की सरकार ने वहाँ की शिक्षा से हिन्दी को बहिष्कृत किया, फल यह निकला कि वहाँ की जनता ने हिन्दी के विद्यालय स्थापित किए जिनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँच गयी है। दक्षिण के श्री के.पी. आत्मा हिन्दी के फिल्म बनाते हैं। अभी हाल ही में उनके गुरू मद्रास के श्री टी. प्रकाश राव ने उन्हें आशीर्वाद दिया है। श्री प्रकाश राव स्वयं एक अच्छे फिल्म निर्देशक हैं। कुछ दिन पूर्व ही भारत के शिक्षा मंत्री श्री राव ने अपने मद्रास के एक भाषण में कहा था कि अखिल भारतीय स्तर का काम बिना हिन्दी के नहीं चल सकेगा।

अत: अहिन्दी भाषा भाषी हिन्दी के विरोधी हैं, यह कहना सर्वथा गलत है। फिर महाराष्ट्र और गुजरात दो अहिन्दी भाषी राज्य तो हिन्दी के बड़े भारी समर्थक हैं।

क्या भारतीय भाषाओं में विरोध संभव है?

अब हमें यह भी सोचना चाहिए कि क्या हिन्दी और भारतीय भाषाओं का कोई वास्तविक विरोध हो सकता है। भाषा विचारों को व्यक्त करने का सबसे बड़ा साधन है। विचार मूलत: आधारित रहते हैं, संस्कृति पर, भारतीय संस्कृति पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक एक संस्कृति है। इस संस्कृति की नींव है अध्यात्म। भारतीय सभ्यता का मनन इसी नींव पर खड़ा है। हमारे देश में संस्कृति और सभ्यता दोनों को समान रूप का महत्व दिया गया था। हमारे 6 दर्शनों में एक वैशेनीक दर्शन है, उसमें दो विशिष्ट शब्द आए हैं, एक नि:श्रेयस और दूसरा अभ्युदय। नि:श्रेयस का तात्पर्य है अध्यात्म और अभ्युदय का तात्पर्य है अधिभुत अर्थात हमारा ध्यान आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों बातों की ओर रहा है। इन दोनों शब्दों का वैशेषिक दर्शन में विस्तार से निरूपण किया गया है।

संस्कृति और सभ्यता के आधारभूत हमारे ग्रंथ हैं, रामायण और महाभारत। संस्कृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामायण और महाभारत का शताब्दियों से सबसे महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आदि कवि वाल्मीकि ने और महर्षि वेदव्यास ने संस्कृत में रामायण और महाभारत की रचना कर जो कार्य किया वही आधुनिक समस्त भारतीय भाषाओं में भी हुआ। तमिल भाषा में कम्बनने कम्बरामायण लिखी तो आंध्र में रंगनाथ और भास्कर ने रामायण को तेलगू भाषा में एक अलग ही रूप दिया। कन्नड़ भाषा में कवि नागचन्द्र की पम्प रामायण चली तो मलयालम भाषा में एजुतच्चन की आध्यात्म रामायण का विकास हुआ। मराठी में मोरोपंत की रामकथा फूली-फली तो बंगला भाषा में कृतिवास की रामायणने सुगन- फैलाई। असमिया भाषा में माधव कदलि ने रामायण लिखकर असम को शेष भारत के साथ बांधा तो उड़िया में सरलादास और बलरामदास की रामायणों ने यहाँ के लोगों को बाकी भारत की भावनाओं के सूत्र में बांधा। हिन्दी में तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' रचकर सारे हिन्दुओं में इस प्रकार की एकता कायम की कि फूट और कलह के प्रचंड से प्रचंड प्रभंजन तथा भारी से भारी झंझावात भी उसे ध्वस्त न कर सके।

रामायण की जैसी छाप भारत के प्रत्येक नर-नारी पर पड़ी है, ठीक वैसी ही छाप महाभारत ने यहाँ के जन-मानस पर छोड़ी है। यदि तेलुगु भाषा के तीन प्राचीन महाकवियों, नलय, तिक्कन और उर्कन ने महाभारत की रचना की, तो कन्नड़ भाषा में पम्प और कुमार व्यास का महाभारत मशहूर हुआ। मलयालम में एजुतच्चन का महाभारत उनकी रामायण से भी अधिक भरा-पूरा उतरा, तो मराठी में श्रीधर ने पांडव प्रताप लिखकर जनता को देश की एकता का पाठ पढ़ाया है। उड़िया में तो सरलादास ने महाभारत को जनगण के जीवन में इस प्रकार मिला दिया कि वह उड़िया के व्यास ही कहलाने लगे। पंजाबी में कृष्णलाल ने महाभारत को कविता में लिखकर जनता में भारतीयता का संदेश फैलाया तो असमिया में राम सरस्वती ने महाभारत के आधार पर अनेक पोथियों की रचना की। हिन्दी में गोकुलनाथ और सबलसिंह चौहान ने महाभारत लिख लोगों में एकदेशीयता को बढ़ावा दिया तो बंगला में महाभारत के तीस से भी अधिक रूपान्तर हुए जिसमें रामदास के महाभारत ने सारे देश को बंगालियों के सामने ला खड़ा किया।

विभिन्न भाषाओं का अपना-अपना स्थान :

इस प्रकार हिन्दी और भारतीय भाषाओं का कोई वास्तविक विरोध संभव नहीं है और भारतीय भाषाओं का क्या संसार की किसी भाषा का किसी भाषा से विरोध नहीं हो सकता। ये सब भाषाएँ सरस्वती के विभिन्न रूप हैं। सरस्वती के भिन्न-भिन्न रूपों में क्या कोई विरोध हो सकता है? हाँ, हर चीज का अपना-अपना स्थान होता है। अंग्रेजी से भी हमारा कोई विरोध नहीं। गांधीजी कहा करते थे कि अंग्रेज उनके मित्र हैं, वे अंग्रेजों का आदर करते हैं। परन्तु मुट्ठी भर अंग्रेज सात समुद्र पार से आकर भारत पर हुकूमत करें यह अस्वाभाविक बात है। अत: अंग्रेजी राज्य जाना चाहिए। वही बात मैं अंग्रेजी भाषा के लिए कहता हूँ। 175 वर्षों के अंग्रेजी राज्य के बावजूद जिस भाषा को 2 प्रतिशत लोग भी अच्छी तरह नहीं जानते वह इस देश पर छायी रहे, यह नहीं हो सकता। देश को एक सूत्र में हिन्दी ही बांधकर रख सकती है। केन्द्र की वह अन्तरप्रांतीय कार्य की भाषा हिन्दी ही हो सकती है। जिन राज्यों की मातृभाषा हिन्दी नहीं हैं, वहाँ का काम वहीं की भाषा में चले। शिक्षा के माध्यम विश्वविद्यालय तक मातृभाषा में चलें, अदालतों का काम उच्चन्यायालयों तक स्थानीय भाषाओं में हो। परन्तु अखिल भारतीय रूप में हिन्दी ही चल सकती है। अत: उसकी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। इस देश के निवासियों को अपनी मातृभाषा और हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य है।अंग्रेजी या अन्य कोई आधुनिक विदेशी भाषा जो चाहे वे सीखें, इनकी शिक्षा अनिवार्य होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय कार्य सबके लिए जरूरी नहीं।

हिन्दी अपना स्थान क्यों नहीं ले सकी?

हिन्दी को राज्यभाषा पद पर प्रतिष्ठित हुए एक दीर्घकाल व्यतीत हो गया। संविधान में निश्चय किया गया था कि 15 वर्षों में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी, पर यह नहीं हुआ। सन् 1965 तक हिन्दी को जो अंग्रेजी का सम्पूर्ण स्थान ले लेना चाहिए था उसके पूर्व संसद में 2 कानून बने जिससे अंग्रेजी अनिश्चित काल तक चल सकती है। 15 वर्षों में हिन्दी जो अंग्रेजी का पूर्ण स्थान न ले सकी उसकी बहुत कुछ जिम्मेदारी केन्द्रीय शासन की है। केन्द्रीय सरकार ने वे कार्य ही नहीं किए जिनसे हिन्दी अंग्रेजी का स्थान 15 वर्षों में लेती। और इसका केन्द्रीय सरकार से भी अधिक उत्तरदायित्व है हिन्दी भाषी सरकारों का। सन् 1948 और 1952 के बीच उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश में इन राज्यों की राजभाषा कानून से हिन्दी बना दी गयी थी। हरियाणा प्रान्त के निर्माण होते ही यही बात हरियाणा में हुई। न जाने कितने आदेश निकले कि हिन्दी भाषी राज्यों का समूचा काम हिन्दी में होगा। परंतु इन कानूनों और आदेशों के बावजूद भी इन राज्यों का अधिकांश काम अंग्रेजी में ही चलता रहा। मुझे मालूम हुआ है, कि इधर कुछ परिवर्तन हुए हैं, और अब हिन्दी भाषी राज्यों का अधिकतर काम हिन्दी में चलने लगा है, परन्तु अभी भी इन राज्यों में बहुत सा काम अंग्रेजी में चलता है। कहा जाता है, कि हिन्दी के टाइपराइटर पर्याप्त परिमाण में इन राज्यों में नहीं हैं और इन राज्यों के अधिकांश राज्य कर्मचारी अंग्रेजी में ही काम करने के अभ्यस्त हैं। इसी प्रकार की और भी कुछ दलीलें दी जाती हैं पर वे सब पोची दलीलें हैं। टाइपराइटरों को उपलब्ध करना सरकार के लिए एक बाँए हाथ का खेल हैं। और इतने दीर्घकाल में भी जिन राज्य कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने का अभ्यास नहीं हुआ उन्हें पेन्शन दे दी जानी चाहिए।

हिन्दी भाषी राज्यों का उत्तरदायित्व और हिन्दी सेवक संघ :

हिन्दी भाषी राज्यों का समूचा काम हिन्दी में चले। इधर मैं इसी प्रयत्न में संलग्न रहा हूँ। आचार्य विनोबा भावे ने एक से अधिक बार मेरे इस कार्य का मुक्त कंठ से समर्थन किया है। परंतु प्रजातंत्र में कार्य करने के लिए सबसे अधिक आवश्यक जनबल होता है। इसलिए मैंने 'हिन्दी सेवक संघ' नामक एक स्वयंसेवकों के संगठन की स्थापना की थी। यह संस्था लगभग 2 वर्ष पूर्व बिहार में स्थापित हुई थी। यदि किसी को किसी कार्य में असफलता मिलती है तो सत्य के आधार पर उसे इस बात को स्वीकार कर लेना चाहिए। मैंने कुछ मित्रों की सलाह से यह अपील की थी कि इस संस्था में हिन्दी के काम के लिए 5 लाख स्वयंसेवक मिलें। हिन्दी भाषी लोगों की संस्था लगभग 20 करोड़ है अत: 5 लाख स्वयं सेवक मिलना कोई कठिन बात नहीं

थी। यह संस्था मनसा वाचा कर्मणा अहिंसक ढंग से काम करेगी। यह संस्था की कार्य प्रणाली के संबंध में संस्था के संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है। इस संगठन को यद्यपि अनेक विद्वानों और हिन्दी भाषी नेताओं का समर्थन मिला पर यह जनता का समर्थन प्राप्त नहीं कर सकी और इस संगठन के लिए हजारों रूपया अपने पास से खर्च करने पर भी मैं अब तक असफल रहा हूँ।

भावी कार्यक्रम

अब आगे हमें क्या करना है इस पर विचार करना आवश्यक है। इस संबंध में मैं निम्नलिखित कार्यक्रम उपस्थित करना चाहता हूँ।

(1) केन्द्रीय सरकार को सन् 1965 की 26 जनवरी के बाद अपना समस्त कार्य संविधान के अनुसार हिन्दी में करना चाहिए। उन दो कानूनों के बावजूद भी जिनके अनुसार सन् 1965 के बाद अंग्रेजी अनिश्चित काल तक चल सकती है, अंग्रेजी केवल हिन्दी के साथ चल सकती है। केन्द्र का कोई कार्य भी केवल अंग्रेजी में नहीं हो सकता। परंतु अभी भी केन्द्र का अधिकतर काम अंग्रेजी में होता है। जिस संविधान के प्रति वफादार रहने की हम शपथ लेते हैं उस संविधान की भाषा विषयक धाराओं को हम सरासर तोड़ रहे हैं।

(2) केन्द्रीय सरकार को हिन्दी भाषी राज्यों और महाराष्ट्र एवं गुजरात से साथ ही जो अहिन्दी भाषी राज्य चाहें उनसे अपना समस्त पत्र व्यवहार हिन्दी में करना चाहिए। केन्द्रीय सरकार यह तो कहती है कि वह हिन्दी के पत्रों का हिन्दी में उत्तर देती है परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। इन राज्यों को केन्द्रीय सरकार द्वारा जो पत्र भेजे जाएँ वे भी हिन्दी में ही जाना चाहिए।

(3) लोक सेवा आयोग की परीक्षाएँ वैकल्पिक रूप से समस्त भारतीय भाषाओं में ली जाएँगी यह घोषणा केन्द्रीय सरकार अनेक बार कर चुकी है। पर इस घोषणा को कार्य रूप में परिणित नहीं किया जा रहा है। यह घोषणा तुरन्त कार्यरूप में परिणित होना चाहिए।

(4) संसद में अंग्रेजी के भाषाओं का हिन्दी में और हिन्दी के भाषाओं का अंग्रेजी में तुरन्त अनुवाद की व्यवस्था है। हिन्दी भाषी मंत्रियों को अपने आधे भाषण हिन्दी में देना चाहिए। संसद में यदि कुछ सदस्य हिन्दी नहीं समझते तो ऐसे सदस्यों से उन सदस्यों की संख्या अधिक है जो अंग्रेजी नहीं समझते। इस लिए हिन्दी के भाषणों की अंग्रेजी में और अंग्रेजी के भाषणों की हिन्दी में अनुवाद की तुरन्त व्यवस्था की गई है। फिर यह राष्ट्रभाषा का प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है। पंडित जवाहरलाल नेहरू यदि किसी विषय पर भाषण देते थे तो उनका एक भाषण सदा हिन्दी में होता था। परन्तु आज तो सभी हिन्दी भाषी मंत्री भी केवल अंग्रेजी में बोलते हैं।

(5) यह हर्ष की बात है कि साहित्य निर्माण के लिए केन्द्रीय सरकार ने हर राज्य को एक-एक करोड़ रूपये का अनुदान दिया है। मुझे मालुम हुआ है कि अहिन्दी भाषी राज्यों में तो यह कार्य आरंभ हो गया है परन्तु हिन्दी भाषी राज्यों में अब तक यह काम संतोषजनक रूप से आरंभ नहीं हुआ है। इस सम्बंध में यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि समस्त हिन्दी भाषी राज्यों को मिलकर इस साहित्य निर्माण की योजना बनानी चाहिए। किसी विषय पर मौलिक ग्रन्थ तो एक से अधिक लिखे जा सकते हैं परन्तु किसी ग्रन्थ का एक से अधिक अनुवाद करना निरर्थक होगा। और इस पर जो खर्च होगा वह व्यर्थ जाएगा।

(6) हिन्दी भाषी राज्यों का समूचा कार्य जब केवल हिन्दी में चलना चाहिए। इन राज्यों को अपने आपस का पत्र व्यवहार और महाराष्ट्र, गुजरात आदि अहिन्दी भाषी उन राज्यों से, जो हिन्दी के समर्थक हैं, अपना पत्र व्यवहार एवं केन्द्रीय सरकार से अपना पत्र व्यवहार केवल हिन्दी में

करना चाहिए। ऐसे अहिन्दी भाषी राज्य तो इन पत्रों का अंग्रेजी अनुवाद चाहते हैं उन्हें अंग्रेजी अनुवाद भेजा जा सकता है। क्योंकि अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी चलाने के लिए हम कोई कटुत उत्पन्न नही करना चाहते। परन्तु हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी न चले इसके लिए हम कटुता की कोई परवाह नहीं करेंगे और इसके लिए यदि सत्याग्रह करना पड़े तो उसके लिए भी हमें तैयार होना होगा बशर्ते कि हमारा सारा कार्य अहिंसक हो। पाठ्यक्रम की पुस्तकें सब हिन्दी राज्यों में एक सी हों और इन पुस्तकों में जिस शब्दावली का उपयोग हो वह शब्दावली एक सी हो।

(7) यदि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का कुछ प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में होना है तो यह आवश्यक है कि बैंकों में हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया जाए अर्थात् हिसाब-किताब लेन-देन का लेखा-जोखा हिन्दी में रखा जाए। उनकी चैंकें, ड्राफ्ट और अन्य सब फार्म हिन्दी में उपलब्ध रहें और उनके कार्यकर्ताओं को यह निश्चयात्मक निर्देश हो कि वे हिन्दी में लिखे गए चैकों आदि पर भी उसी तत्परता से कार्यवाही करें जैसी वे अन्यथा करते हैं।

(8) राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 7 के प्रवृत्त होने की तारीख तुरन्त नियत कर दी जाए जिससे हिन्दी भाषी राज्यों के राज्यपालों के लिए यह सम्भव हो जाए कि वे राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से अपने राज्य के उच्च न्यायालय को यह प्राधिकार दे दें कि वह अपने निर्णय, आदेश और कालासिया (डिक्रीस) हिन्दी में दे सकें।

(9) सरकारी कर्मचारियों को सेवा में भर्ती किए जाने के पश्चात् संघ की राजभाषा हिन्दी में सम्पर्क स्तर की परीक्षा में उत्तीर्ण होना वैसे ही अनिवार्य कर दिया जाए जैसे अंग्रेजों के युग में इंडियन सिविल सर्विस के आफिसरों के लिए प्रदेश विशेष की भाषा में परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक और अनिवार्य था। यदि आवश्यक हो तो इसके लिए उचित कानून बना दिया जाए।

(10) संघ के राजकाज में हिन्दी और अंग्रेजी के एक साथ प्रयोग के संबंध में प्रतिवर्ष एक रिपोर्ट संसद पर रखी जाए जैसे संघ लोक सेवा आयोग आदि की रिपोर्ट रखी जाती है।

(11) हमारा विचार है कि जो भी भाषा किसी राज्य ने अपनी राजभाषा मान ली है उसमें हर केन्द्रीय अधिनियम, नियम आदि का प्राधिकृत पाठ निकालने के लिए कानून में उपबन्ध किया जाए, जिससे कानून के क्षेत्र में वे भाषाएँ भी संघ की राजाभाषा का दर्जा पा जाएँ।

(12) इसी प्रकार कानून के जरिये यह उपबन्ध कर दिया जाए कि उस कानून में दी गई बातों के लिए हर ऐसी प्रादेशिक राजभाषा का प्रयोग संघ की राजभाषा के रूप में किया जायगा जो उस कानून में बताई हुई हो।

(13) उच्चतम और उच्च न्यायालयों के प्रकाशनीय निर्णयों का हिन्दी में और हर अन्य प्रादेशिक राजभाषा में निकालने की व्यवस्था अविलम्ब की जाए।

(14) वैज्ञानिक और शास्त्रीय साहित्य की और अन्य प्रादेशिक राजभाषाओं में रचना कराने के लिए एक स्वशासी राष्ट्रीय ट्रस्ट की स्थापना की जाए और उसे संघ सरकार एक निश्चित रकम का अनावर्त्तक अनुदान (नानरेकिंग ग्रॅन्ड) के रूप में प्रारंभ में दें और प्रतिवर्ष आवश्यकतानुसार आवर्तक अनुदान दें। यही ट्रस्ट यह सब काम कराए।

(15) हिन्दी भाषी राज्यों में आयकर, दानकर, और सम्पत्ति शुल्क (इस्टेट ड्यूटी) सम्बन्धी सब कार्य हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा करने का आदेश दे दिया जाए। इन राज्यों में व्यापारियों और अन्य आयकर दाताओं को हिन्दी में ही कार्य होने की सुविधा होगी क्योंकि उनमें से अधिकांश अंग्रेजी जानते ही नहीं या नाम को ही

जानते हैं और इस कारण उन्हें वकीलों पर ही निर्भर करना पड़ता है। हिन्दी में काम होने से बड़ी सुविधा जो जाएगी। अपील वगैरह भी तो उन्हीं प्रदेशों में स्थित आय कर अपील अधिकरण में जाती है। अत: इस सम्बन्ध में विशेष असुविधा न होनी चाहिए। अंग्रेजों के जमाने में भी तो बही-खाते वगैरह सब हिन्दी में होते थे और उन्हें आयकर विभाग के कर्मचारी देखते ही थे। अत: उन लोगों को अब हिन्दी में कार्य करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यह बात केन्द्रीय विक्रय कर के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए।

(16) केन्द्रीय अधिनियमों, नियमों आदि के हिन्दी पाठ हिन्दी भाषी राज्यों के राजपत्रों में भी वैसे ही प्रकाशित होने चाहिए जैसे उनके अंग्रेजी पाठ उन राजपत्रों में प्रकाशित कराए जाते हैं। ऐसा करने से वहाँ के वकीलों को इन पाठों की पूरी जानकारी मिल सकेगी।

(17) हिन्दी सम्बन्धी कार्य के लिए जो आयोग केन्द्र में कार्य कर रहे हैं उनके अध्यक्ष और हिन्दी कार्य सम्बन्धी सदस्यों की नियुक्तियाँ केन्द्रीय हिन्दी सलाहकार समिति से परामर्श करने के पश्चात् की जाएँ क्योंकि इस बारे में सरकार को आवश्यक जानकारी उत्तम रूप से उस समिति से मिल सकती है।

(18) समस्त विश्वविद्यालयों का माध्यम केन्द्रीय भाषाएँ बनायी जाए।

(19) हिन्दी भाषी राज्यों में जनता का भी समस्त कार्य हिन्दी में चले। नाम पट केवल हिन्दी में रहे कपंनियों की रिपोर्ट आदि केवल अंग्रेजी में न छपकर हिन्दी में भी रहें। श्री जयदयालजी डालमिया और श्री विष्णु हरिजी डालमिया ने इस सम्बन्ध में स्तुत्य प्रयत्न किया है। अन्य व्यापारी संस्थानों को भी यह करना चाहिए।

(20) मराठी और हिन्दी दोनों देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। महाराष्ट्र का प्रधान नगर बम्बई है। यहाँ के नाम पट केवल अंग्रेजी में रहे यह अनुचित है। बम्बई नगर के नामपट हिन्दी में भी होने चाहिए।

(21) भारत की राजधानी दिल्ली हिन्दी भाषी क्षेत्र है वहाँ के नाम पट भी हिन्दी में होने चाहिए।

(22) जिन भाषाओं की लिपि देवनागरी नहीं है उन भाषाओं का साहित्य देवनागरी लिपि में भी निकले। इसका यह अर्थ नहीं कि उन लिपियों को हम समाप्त करना चाहते हैं, पर देवनागरी लिपि, में भी यह साहित्य निकलने से उस साहित्य का अखिल भारतीय स्तर पर प्रचार होगा।

अपना यह भाषण समाप्त करने के पूर्व मैं यह कहना चाहता हूँ कि मानव के लिए भाषा का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। मानव इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी अपनी ज्ञान शक्ति के कारण है। इस शक्ति का मुख्य आधार भाषा है। जैसी भाषा मनुष्य बोलता है अन्य कोई जीव नहीं। मैंने दुनिया के प्राय: सभी देशों में घूमकर देखा है कि हर देश को अपनी भाषा का कितना सम्मान और गौरव है। यह दुर्भाग्य की बात है कि भारत में आज भी एक विदेशी भाषा का प्रभुत्व है। परंतु यह अस्वाभाविक बात है। अस्वाभाविक बात सदा नहीं चल सकती। संसार की कोई भी शक्ति या सारे संसार की सम्मिलित शक्ति भी हिन्दी को और भारतीय भाषाओं को अपने स्वाभाविक स्थान से नहीं हटा सकती। वरन् वह समय भी सन्निकट है जब हिन्दी संयुक्त राष्ट्र (यू.एन.ओ.) को भी एक भाषा होकर रहेगी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के हाल ही में हुए अहमदाबाद के सम्मेलन में भारत के शिक्षा मंत्री डॉ. राव ने भी यह बात कही थी।

पुन: धन्यवाद।

जय हिन्दी जय भारतीय।

भाषाएँ और संसार की समस्त भाषाएँ।

वन्दे मातरम्।

जय जगत्। •

श्रेष्ठ एकांकी किसे कह सकते हैं ?

कौन कलाजन्य वस्तु श्रेष्ठ कही जा सकती है, इस संबंध में मैंने अपने 'तीन नाटक' के प्राक्कथन में कुछ विवेचन किया था। इस विषय में उस समय मेरा जैसा मत था, वैसा ही आज भी है। जो कसौटी अन्य कलाजन्य वस्तु की हो सकती है वही एकांकी नाटक की भी। इस कसौटी का दिग्दर्शन मैंने इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जॉन रास्किन के एक कथन को उद्धृत कर किया था। चूँकि इस संबंध में उस दिन के और आज के मेरे मत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, इसलिए उसी कथन को मैं आज यहाँ भी उद्धृत करता हूँ। मेरा मत है कि जो एकांकी नाटक इस परिभाषा की कसौटी पर कसने से खरा उतरता है वही श्रेष्ठ एकांकी है। जॉन रास्किन लिखते हैं-

'अब मैं उत्तम कलाजन्य वस्तु की व्याख्या इतने व्यापक रूप से करना चाहता हूँ कि उसके अन्तर्गत उसके समस्त विभाग और उद्देश्य आ जावें। इसीलिए मैं यह नहीं कहता कि वही कलाजन्य वस्तु सर्वोत्तम है जो सबसे अधिक आनन्द देवे, क्योंकि किसी वस्तु का उद्देश्य कदाचित् शिक्षा देना हो और आनन्द देना न हो। मैं यह भी नहीं कहता कि कलाजन्य वही वस्तु सर्वश्रेष्ठ है जो सबसे अधिक शिक्षा देवे, क्योंकि किसी वस्तु का उद्देश्य कदाचित् आनन्द देना ही हो और शिक्षा देना न हो। मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि कलाजन्य वही वस्तु सबसे अच्छी है जिसमें सबसे अधिक अनुकरण किया गया हो, क्योंकि कदाचित् कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उद्देश्य नवीनता का निर्माण करना हो और अनुकरण करना न हो। और मैं यह भी न कहूँगा कि कलाजन्य वही वस्तु सर्वोत्कृष्ट है जिसमें सबसे अधिक नवीनता हो, क्योंकि कदाचित् कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उद्देश्य अनुकरण करना हो और नवीनता का निर्माण नहीं। मैं तो उस वस्तु को कला की सबसे महान वस्तु मानता हूँ जो किसी भी मार्ग द्वारा हृदय में सबसे अधिक और सबसे महान विचारों को उत्पन्न कर सके।' •

डॉ. सेठ गोविन्ददास जी

• साभार-दीप्ति से साभार

एकांकी

कंगाल नहीं

डॉ. सेठ गोविन्ददास जी

पात्र व स्थान

पात्र

राजमाता	-	सिलापरी गाँव की मालगुजारिन, राजगोंड वंश की राजमाता।
राजमाता के तीन पुत्र	-	बड़े राजा, मँझले राजा, छोटे राजा
बड़ी रानी	-	बड़े राजा की पत्नी
मँझली रानी	-	मँझले राजा की पत्नी
राजकुमारी	-	राजमाता की पुत्री
स्थान	-	सिलापरी गाँव (जिला सागर, मध्यप्रान्त)

नोट - इस नाटक की कथा को मध्य प्रान्त के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता रायबाहदुर हीरालाल ने लेखक की बताई थी। कथा एक सत्य घटना है।

स्थान - सिलापरी गाँव में राजमाता का घर

समय - सन्ध्या

(एक तरफ को राजमाता के घर की खपरेल परछी दिखाई देती है, जिसके कई खपरे टूट गये हैं। परछी में एक ओर घर के भीतर जाने का दरवाजा दिखता है, जिसके किवाड़ों की लकड़ी भी टूट गई है। यह दरवाजा खुला हुआ है और इसके अन्दर घर के छोटे से मैले कुचैले कोठे का एक हिस्सा दिखाई देता है। परछी के सामने मैदान है। मैदान के एक तरफ दूर घर गाँव के कुछ झोपड़ें दिखते हैं और दूसरी तरफ खेत का एक हिस्सा, जिसमें छोटी-छोटी बिरल सूखी सी फसल खड़ी है। परछी में एक फटे से बोरे पर राजामाता बैठी हैं उनकी उम्र करीब 50 साल की है। रंग

• साभार-रश्मि से साभार

साँवला है। मुख और शरीर पर कुछ झुर्रियाँ पड़ गई हैं। बाल आधे से अधिक सफेद हो गये हैं। शरीर बहुत दुबला पतला है। शरीर पर वे एक मैली सी लाल बुंदेलखंडी सूती साड़ी पहने हैं, जो कई जगह से फटी हुई है और जिसमें कई जगह थिगड़े लगे हैं। राजमाता के पास बड़ी रानी और मँझली रानी जमीन पर ही बैठी हुई हैं। दोनों साँवले रंग की हैं। बड़ी रानी की उम्र करीब पच्चीस वर्ष और मँझली रानी की करीब बीस वर्ष की है। दोनों युवतियाँ होते हुए भी कृश हैं और उनकी आँखों के चारों तरफ के गढ्ढों और सूखे ओंठों से जान पड़ता है कि उन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता। दोनों राजमाता के समान ही लाल रंग की साड़ियाँ पहने हैं, जो कई जगह से फटी हुई और थिगड़ैल भी हैं। दोनों के हाथों में मोटी-मोटी लाख की एक-एक चूड़ी है। तीनों में बातचीत हो रही है। राजमाता की आँखों में आँसू भरे हैं।)

बड़ी रानी - कहाँ तक रंज करोगी, माँ, और रंज करने से फायदा ही क्या होगा?

राजमाता - जानती हूँ, बेटी, पर जानने से क्या होता है, जो बात रंज की है, उस पर रंज आये बिना नहीं रहता।

मँझली रानी - पर, माँ, जो बात बस की नहीं, उस पर रंज करना फजूल है।

राजमाता - बिना बस की बात ही तो जादा रंज पहुँचाती है।

(घर के भीतर से छोटे राजा और राजकुमारी हाथ में एक-एक तस्वीर लिये हुए आते हैं। छोटे राजा की उम्र करीब बारह वर्ष की है। वह साँवले रंग और ठिगने कद का दुबला पतला लड़का है। एक मैली और फटी सी धोती पहने है, जो घुटने के ऊपर तक चढ़ी है। ऊपर का बदन नंगा है। राजकुमारी करीब 8 साल की साँवले रंग की दुबली पतली लड़की है। एक मैली सी लाल रंग की फटी हुई साड़ी पहने है। साड़ी इतनी फट गई है कि उसके शरीर का अधिकांश हिस्सा साड़ी में से दिखता है।)

छोटे राजा - माँ, (राजकुमारी की ओर इशारा कर) यह कहती है दुर्गावती ने बावन गढ़ जीते थे, मैं कहता हूँ संग्रामशाह ने। फैसला तुम करो, मैं सच्चा हूँ या ये?

राजकुमारी - हाँ, तुम फैसला कर दो, माँ।

राजमाता - बेटी, संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते थे, दुर्गावती ने नहीं।

छोटे राजा - देखा, मैंने पहले ही कहा था, यह वीरता आदमी कर सकता है, औरत नहीं।

(राजकुमारी उदास हो जाती है।)

राजमाता - (राजकुमारी को उदास देखकर) उदास हो गई, बेटी, पर हमारे कुल में तो औरतें आदमियों से कम वीर नहीं हुई। संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीते तो क्या हुआ, दुर्गावती उनसे कम वीर नहीं थीं।

बड़ी रानी - हाँ, संग्रामशाह ने बावन गढ़ जीतकर वीरता दिखाई तो दुर्गावती ने अपने प्राण देकर।

मँझली रानी - हाँ, जीत में वीरता दिखाना उतना कठिन नहीं, जितना हार में।

(राजमाता रो पड़ती हैं।)

बड़ी रानी - माँ, फिर वही, फिर वही।

छोटे राजा - (राजमाता के पास जाकर उनके निकट बैठ कर) माँ, तुम रोती क्यों हो? मैं संग्रामशाह से भी बड़ा वीर बनूँगा। उनने बावन गढ़ जीते थे, मैं बावन शहर जीतूँगा।

राजकुमारी - (राजमाता के पास जाकर) और, माँ, मैं दुर्गावती से भी बड़ी वीर बनूँगी।

छोटे राजा - (संग्रामशाह की तस्वीर दिखाते हुए) देखो, माँ, संग्रामशाह से मैं कितना मिलता जुलता हूँ। अगर तुम मेरी इस फटी धोती की जगह जैसे कपड़े ये पहने हैं, वैसे पहना दो, मुझे तलवार मँगवा दो, और ऐसा ही घोड़ा खरीद दो, तो मैं अकेला बावन शहर जीत लाऊँ।

राजकुमारी - और, माँ, देखो, मैं दुर्गावती से कितनी मिलती हूँ। अगर तुम मुझे भी दुर्गावती जैसे कपड़े पहना दो, हथियार मँगवा दो, और जैसे हाथी पर ये बैठी हैं, वैसा हाथी मँगवा दो, तो मैं भी दुर्गावती से बड़ी वीर बन जाऊँ।

(राजमाता के और अधिक आँसू गिरने लगते हैं।)

बड़ी रानी - (छोटे राजा और राजकुमारी को हाथ पकड़ कर उठाते हुए) अच्छा, राजा जी, और बाई जी, मेरे

साथ चलो, मैं तुम दोनों की सब चीजें मँगा दूँगी।

(दोनों को लेकर बड़ी रानी घर के भीतर जाती है। मँझली रानी राजमाता के निकट सरककर अपनी फटी साड़ी से राजमाता के आँसू पोंछती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

मँझली रानी - माँ, थोड़ा तो धीरज रखो।

राजमाता - बहुत जतन करती हूँ, बेटी, धीरज रखने के बहुत जतन करती हूँ, पर जब इन बच्चों की ऐसी बातें सुनती हूँ, तब तो हिरदे में ऐसा सूल उठता है जैसा भूखे पेट और नंगे तन रहने पर भी नहीं। (कुछ ठहर कर) और, बेटी, एक बात जानती है ?

मँझली रानी - क्या, माँ ?

राजमाता - ये बच्चे ही इन तस्वीरों को लिये घूमते हैं और ऐसा सोचते और कहते हैं, यह नहीं, तेरे मालक और बड़ी बहू के मालक भी जब छोटे थे तब वे भी इसी तरह इन तस्वीरों को लिये घूमते और यही सब कहते फिरते थे। और वे ही नहीं, मेरे मालक, उनके बाप, और उनके बाप, और उनके बाप, सब यही सोचते और कहते थे।

मँझली रानी - आह !

(राजमाता लंबी साँस लेती हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

राजमाता - बेटी, संग्रामशाह और दुर्गावती को पीढ़ियाँ बीत गई। गिरती में सब ने बढ़ती की सोची। बीती को सोच, भवस के लम्बे विचार किये, पर बरतमान किसी ने न देखा और आज... (कुछ रूककर) आज, बेटी, बावनगढ़ के विजेता संग्रामशाह के कुछ को बावन छदाम भी नसीब नहीं।

(मँझले राजा का खेत की तरफ से प्रवेश। मँझले राजा की उम्र 22, 23 वर्ष की है। रंग साँवला और शरीर दुबला पतला तथा ठिंगना है। एक मैली और फटी सी धोती को छोड़कर और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है। हाथ में थोड़े से गेहूँ के दाने हैं, जो बहुत पतले पड़ गये हैं। उन्हें देखकर मँझली रानी घर के भीतर चली जाती है।)

मँझले राजा - (गेहूँ के दानों को राजमाता के सामने पटक कर भर्राये हुए स्वर में) माँ, सब हार में झिरी पड़ गई। बीज निकलना भी कठिन है।

राजमाता - (लम्बी साँस लेकर) तब... तब... तो वसूली भी न होगी।

मँझले राजा - वसूली... वसूली... माँ, लगान तो इस साल सरकार ने मुल्तबी कर दिया।

राजमाता - (एकदम घबड़ाकर खड़े होते हुए) मुल्तबी हो गई ?

मँझले राजा - हाँ, माँ, आज ही हुकम आया है।

राजमाता - तो सिलापरी गाँव से जो एक सौ बीस रूपया बचते थे, वे भी न आयेंगे ?

मँझले राजा - इस बरस तो नहीं, माँ।

राजमाता - फिर हम लोग क्या खायेंगे, पियेंगे ?

मँझले राजा - पिनसन के सरकार एक सौ बीस रूपया साल देती है न ?

राजमाता - सात जीव एक सौ बीस रूपया साल में गुजर करेंगे ? महीने में दस रूपये, एक जीव के लिये तीन पैसे रोज ?

मँझले राजा - बड़े भाई ने एक उपाय और किया है, माँ !

राजमाता - (उत्सुकता से) क्या, बेटा ?

मँझले राजा - तुम धीरज रखकर बैठो तो बताऊँ।

राजमाता - (बैठते हुए) जल्दी बता, बेटा,मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है।

मँझले राजा - माँ, अकाल के कारन सरकार ने काम खोला है न ?

राजमाता - हाँ, जहाँ कंगाल काम करते हैं।

मँझले राजा - पर जानती हो, माँ, उन्हें क्या मिलता है ?

राजमाता - क्या ?

मँझले राजा - हमसे बहुत जादा। चार रूपया महीना, एक-एक को दो आने रोज।

राजमाता - अच्छा !

मँझले राजा - हम सात हैं। बड़े भाई ने अरजी दी है कि हम सब को अकाल के काम में जगह दी जाय। माँ, वह

अरजी मंजूर हो गई तो हम में से एक-एक को दो-दो आने रोज, सुना, दो-दो आने रोज, सब को मिलाकर अट्ठाईस रूपया महीना, तीन सौ छत्तीस रूपया साल, सुना, तीन सौ छत्तीस रूपया साल मिलेगा।

(बड़े राजा का खेत की ओर से प्रवेश। वे अपने भाई से मिलते जुलते हैं। करीब 28 वर्ष की उम्र है। वेष-भूषा उन्हीं के सदृश है। वे अत्यन्त उदास हैं। आकर राजमाता के पास बैठ जाते हैं।)

राजमाता - बेटा, मँझला कहता था कि तूने सरकार को एक अरजी दी है ?

बड़े राजा - (लंबी साँस लेकर) हाँ दी थी, माँ।

राजमाता - (उत्सुकता से) फिर क्या हुआ, बेटा, मंजूर हो गई ?

बड़े राजा - नहीं।

मँझले राजा - नहीं हुई, तो हम कंगालों से भी बदतर है?

बड़े राजा - इसीलिए तो नहीं हुई कि हम कंगालों से कहीं बढ़कर हैं।

राजमाता - बेटा, तेरी बात समझ में नहीं आती।

बड़े राजा - माँ, हमे पिनसन मिलती है, हम महाराजाधिराज राजराजेश्वर संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं, हमारी बड़ी इज्जत है, हमारा बड़ा मान है, हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो, पर हमें कंगालों की रोजनदारी, दो आना रोज, कैसे मिल सकती है ? हमारी भरती कंगालों में कैसे की जा सकती है ?

(बड़े राजा ठठाकर हँसते हैं और लगातार हँसते रहते हैं। राजमाता के आँसू बहते हैं और मँझले राजा उद्विग्नता से बड़े राजा की ओर देखते हैं।)

वनिका-पतन

समाप्त...

•

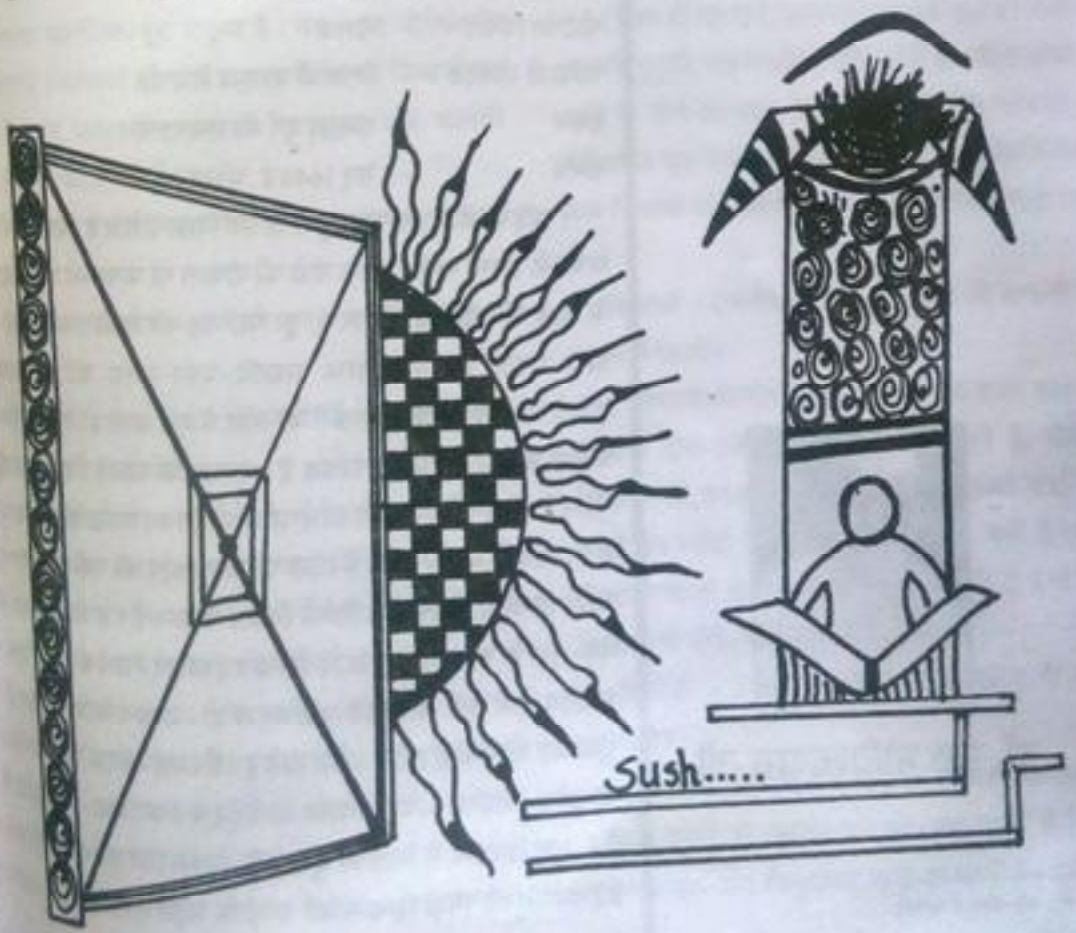

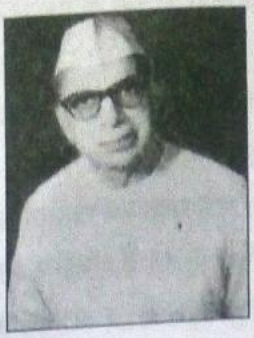

शिवाजी का सच्चा स्वरूप

पात्र व स्थान

पात्र

शिवाजी	-	प्रसिद्ध मराठा वीर
मोरोपंत पिंगले	-	पेशवा
आवाजी सोनदेव	-	शिवाजी का एक सेनापति
स्थान	-	राजगढ़ दुर्ग का एक दालान
समय	-	सन् 1648 ई. संध्या

(दाहिनी ओर दालान का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। दालान की छत पत्थर के खम्भों पर है। उसके पीछे की दीवाल भी पत्थर की ही है। दालान के पीछे की ओर दाहिनी तरफ, दूर पर, गढ़ की सफील और कुछ बुर्जे दिख पड़ती हैं। बाई तरफ सह्याद्रि-पर्वत-माला की शिखरावली दृष्टिगोचर होती है। कुछ शिखरों की ओट में सूर्य अस्त हो रहा है, जिसके प्रकाश से सारा दृश्य आलोकित है। दालान के सामने किले का खुला मैदान है। मैदान में एक ऊँचे स्तंभ पर भगवे रंग का मराठा झंडा फहरा रहा है। दालान में जाजम बिछी है। उस पर कीनख्वाब की गद्दी पर मसनद के सहारे शिवाजी वीरासन से किसी विचार में मग्न हैं। उनके स्वरूप और वेष-भूषा के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना इसलिए निरर्थक है कि एक भी भारतीय ऐसा नहीं जो उससे परिचित न हो। दालान के बाहर शस्त्रों से सुसज्जित दो मावली शरीर-रक्षक खड़े हुए हैं। बाई ओर से मोरोपंत पिंगले का प्रवेश। मोरोपंत अधेड़ अवस्था का गेहूँए वर्ण का ऊँचा-पूरा व्यक्ति है। वेष-भूषा शिवाजी से मिलती-जुलती है, केवल सिर की पगड़ी में अन्तर है। मोरोपंत की पगड़ी शिवाजी की पगड़ी के सदृश मुगल ढ़ंग की न होकर

डॉ. सेठ गोविन्ददास जी

• साभार-रश्मि से साभार

मराठी तरज की है। उसके मस्तक पर त्रिपुंड़ भी है।)

मोरोपंत - (अभिवादन कर) श्रीमन्त सरकार, सेनापति आवाजी सोनदवे कल्याण प्रान्त को जीत, वहाँ का सारा खजना लूट कर आ गये हैं।

शिवाजी - (चौंक कर) अच्छा! (मोरोपंत की ओर देख कर) बैठो, पेशवा, बड़ा शुभ संवाद लाये। आवाजी सोनदेव हैं कहाँ?

मोरोपंत - (वीरासन पर बैठकर) श्रीमन्त की सेवा में अभी उपस्थित हो रहे हैं।

(कुछ देर निस्तब्धता। शिवाजी और मोरोपंत दोनों उत्सुकता से बाई ओर देखते हैं। कुछ ही देर में आवाजी सोनदेव बाई ओर से आता हुआ दिखाई देता है। उसके पीछे हम्मालों का एक भारी झुण्ड है। हर हम्माल के सिर पर एक हारा (बड़ा भारी टोकना) है। हम्मालों के झुण्ड के पीछे एक पालकी है। पालकी बन्द है। आवाजी सोनदेव भी अधेड़ अवस्था का ऊँचा-पूरा मनुष्य है। वेष-भूषा मोरोपंत के सदृश है। आवाजी सोनदेव दालान में आकर शिवाजी का अभिवादन करता है। हम्मालों का झुण्ड और पालकी दालान के बाहर रहते हैं।)

शिवाजी - बैठो, आवाजी, कल्याण-विजय पर तुम्हें बधाई है!

आवाजी सोनदेव - (बैठते हुए) बधाई है श्रीमन्त सरकार को!

शिवाजी - कहो पैदल में मावलियों ने अधिक वीरता दिखायी या हेटकरियों ने?

आवाजी सोनदेव - दोनों ने ही, श्रीमन्त सरकार!

शिवाजी - और घुड़सवारों में बारगिरों ने या शिलेदारों ने?

आवाजी सोनदेव - इनमें भी दोनों ने ही, श्रीमन्त!

शिवाजी - सेना के अधिपति कैसे रहे?

आवाजी सोनदेव - पैदल के अधिपति- नायक, हवालदार, जुमालदार और एक हजारी, तथा घुड़सवारों अधिपति- हवालदार, जुमाल़दार और सूबेदार सभी का काम प्रशंसनीय रहा, श्रीमन्त सरकार!

शिवाजी - (हम्माल की ओर देखकर, मुस्कराते हुए) कल्याण का खजना भी लूट लाये, बहुत माल मिला?

आवाजी सोनदेव - हाँ, श्रीमन्त, सारा खजाना लूट लिया गया और इतना माल मिला जितना अब तक की किसी लूट में भी न मिला था। चाँदी, सोना, जवाहरात न जाने क्या-क्या मिला। मैं तो समझता हूँ, श्रीमन्त, केवल दक्षिण ही नहीं, उत्तर की भी विजय इस संपदा से हो सकेगी।

शिवाजी - (हम्मालों के पीछे पालकी को देखकर) और उस मेणा में क्या है?

आवाजी सोनदेव - (मुस्कराते हुए) उस मेणा... उस मेणा में, श्रीमन्त, इस विजय का सबसे बड़ा तोफा है।

शिवाजी - (उत्सुकता से आवाजी सोनदेव की ओर देखते हुए) अर्थात्?

आवाजी सोनदेव - श्रीमन्त, कल्याण के सूबेदार अहमद की पुत्र-वधू के सौन्दर्य का वृत्त कौन नहीं जानता? उसे भी श्रीमन्त की सेवा के लिए बन्दी करके लाया हूँ।

(शिवाजी की सारी प्रसन्नता एकाएक लुप्त हो जाती है। उनकी भृकुटि चढ़ जाती है और नीचे का ओठ ऊपर के दांतों के नीचे आ जाता है। आवाजी सोनदेव शिवाजी की परिवर्तित मुद्रा देखकर घबड़ा-सा जाता है। मोरोपंत एक-टक शिवाजी की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

शिवाजी - (भर्राये हुए स्वर में) मेणा को तत्काल इस पड़वी में लाओ।

(आवाजी सोनदेव जल्दी से दालान के बाहर जाता है। शिवाजी एक-टक पालकी की ओर देखते हैं, मोरोपंत शिवाजी की तरफ। कुछ ही क्षणों में पालकी दालान में आती है। ज्योंही पालकी दालान में रखी जाती है त्योंही शिवाजी जल्दी से पलकी के निकट पहुँचते हैं! मोरोपंत शिवाजी के पीछे-पीछे जाता है।)

शिवाजी - (आवाजी सोनदेव से) खोल दो मेणा, आवाजी।

(आवाजी सोनदेव पालकी के दरवाजे खोलता है। दरवाजे खुलते ही अहमद की पुत्र-वधू उसमें से निकल चुपचाप एक ओर सिकुड़कर खड़ी हो जाती है। वह परम

सुन्दरी युवती है। वेष-भूषा मुगल स्त्रियों का सदृश।)

शिवाजी - (अहमद की पुत्र-वधू से) माँ, शिवा अपने सिपहसालार की इस नाकाबिल हरकत पर आपसे मुआफी चाहता है। आह ! कैसी अजीबो-गरीब खूबसूरती है आपकी। आपको देखकर मेरे दिल में एक... सिर्फ एक बात उठ रही है- कहीं मेरी माँ आपकी सी खूबसूरत होती तो मैं भी बदसूरत न होकर एक खूबसूरत शख्स होता। माँ, आपकी खूबसूरती को मैं एक... सिर्फ एक काम में ला सकता हूँ- उसका हिन्दू-विधि से पूजन करूँ, उसकी इस्लामी तरीके से इबादत करूँ। आप जरा भी परेशान न हों। माँ, आपको आराम, इज्जत, हिफाजत और खबरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायगा, बिना देरी के, फौरन। (आवाजी सोनदेव की ओर घूमकर) आवाजी, तुमने ऐसा काम किया है, जो कदाचित् क्षमा नहीं किया जा सकता। शिवा को जानते हुए, तुम्हारा साहस ऐसा घृणित कार्य करने के लिए कैसा हुआ? शिवा ने आज पर्यन्त किसी मसजिद की दीवाल में बाल बराबर दरार भी न आने दी। शिवा को यदि कहीं कुरान की पुस्तक मिली तो उसने उसे सिर पर चढ़ा, उसके एक पन्ने को भी किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये बिना, मौलवी साहब की सेवा में भेज दिया। हिन्दू होते हुए भी शिवा के लिए इस्लाम-धर्म पूज्य है। इस्लाम के पवित्र स्थान, उसके पवित्र ग्रंथ, सम्मान की वस्तुएँ हैं। शिवा हिन्दू और मुसलमान प्रजा में कोई भेद नहीं समझता। अरे! उसीके सेना में मुसलिम सैनिक तक हैं। वह देश में हिन्दू-राज्य नहीं, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहता है। आततायियों से सत्ता का अपहरण कर उदार-चेताओं के हाथों में अधिकार देना चाहता है। फिर पर-स्त्री-अरे ! पर-स्त्री तो हरेक के लिए माता के समान है। जो अधिकार-प्राप्त जन हैं, जो सरदार हैं, या राजा, उन्हें... उन्हें तो इस संबंध में विवेक, सबसे अधिक विवेक रखना आवश्यक है। (कुछ रूक कर) आवाजी, क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते थे ? इसीलिए तो तुमने यह कृति नहीं की? शिवा ये लड़ाई-झगड़े, ये लूट-पाट क्या व्यक्तिगत सुखों के लिए कर रहा है? क्या स्वयं चैन उड़ाना उसका उद्देश्य है? तब... तब तो ये रक्तपात, ये लूट-मार, घृणित, अत्यन्त घृणित कृतियाँ हैं। शिवा में यदि शील नहीं तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर तो हम में और इन्द्रिय-लोलुप लुटेरों तथा डाकुओं में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। अरे तब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय, कहीं श्रेयस्कर है। (मोरोपंत से) आह ! पेशवा, यह... यह मेरे... मेरे एक सेनापति ने... मेरे एक सेनापित ने क्या... क्या कर डाला? लज्जा से मेरा सिर आज पृथ्वी में नहीं, पाताल में घुसा जाता है। इस पाप का न जाने मुझे कैसा... कैसा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा? (कुछ रूक कर) पेशवा, इस समय तो मैं केवल एक घोषणा करता हूँ- भविष्य में अगर कोई ऐसा कार्य करेगा तो उसका सिर उसी समय धड़ से जुदा कर दिया जायेगा।

(शिवाजी का सिर नीचे झुक जाता है। अहमद की पुत्र-वधू कनखियों से शिवाजी की ओर देखती है। उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं। मोरोपंत शिवाजी की ओर देखता है और आवाजी सोनदेव घबड़ाहट भरी दृष्टि से मोरोपंत की ओर।)

यवनिका

समाप्त •

दिशाएँ बेहद उदास

काव्य संग्रह

डॉ. आर.एस. तिवारी

पड़ाव प्रकाशन

एच-3, उज्जैनदास मेहता परिसर,
नेहरू नगर, भोपाल

सेठ (डॉ.) गोविन्ददास जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

स्वतंत्र सेनानी, कुशल राजनेता एवं साहित्यकार सेठ (डॉ.) गोविन्ददास का जन्म 16 अक्टूबर सन् 1896 विजया दशमी दशहरा पर्व दिन को दीवान बहादुर जीवनदास के सुपुत्र के रूप में जबलपुर (म.प्र) में हुआ।

इनके दादा राजा गोकुलदास मध्यप्रदेश में ही नहीं, भारत में अपनी प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि के लिए सुपरिचित थे। लक्ष्मी का आर्शीवाद था किन्तु दानशीलता में आगे थे।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पुकार पर राजमहल छोड़कर सेठ गोविन्ददास भारत माता को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करने राजनीति में तथा स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गए। सन् 1920 से सन् 1947 तक जबलपुर में ही नहीं भारत भ्रमण कर हजारों युवकों को स्वतंत्रता संग्राम में आने प्रेरित किया। सेठ गोविन्ददास ने भी कई वर्षों तक जेल की यातनाएँ सही। पिता के विरोध के बावजूद सेठ गोविन्ददास देशमुक्ति के ध्येय से विचलित नहीं हुए। कुछ काल तक वे पिता से भी अलग रहे।

सेठ गोविन्ददास स्वतंत्रता आंदोलन के पूर्व से ही साहित्यिक क्षेत्र में सक्रिय रहे।

उनको साहित्यिक योगदान को स्मरण कर कई संस्थाओं ने उन्हें महत्वपूर्ण पद-गौरव से सम्मानित किया। दो बार वे मध्यप्रदेश के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति मनोनीत किए गए। सन् 1948 में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के सभापति पद को उन्होंने गौरान्वित किया। वे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अ.भा. मारवाड़ी सम्मेलन, भारत गौ-सेवक समाज जैसे कई प्रांतीय राष्ट्रीय महत्व की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं

• विवरण पत्रिका अक्टूबर 2009 से साभार

सामाजिक संस्थाओं के सभापति मनोनीत हुए। भारत की चौदह भारतीय भाषाओं की उन्नति हेतु उन्होंने 'भारती संगम' संस्था स्थापित की। इसका उद्घाटन पूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने किया तथा इसका शिलान्यास पं. नेहरू ने।

स्वतंत्रता संग्राम के शहिदों की स्मृति जागृत अमर रखने हेतु जबलपुर में सेठ गोविन्ददास जी ने शहीद स्मारक भवन का निर्माण किया। इस भवन में प्रांतीय भाषाओं के नाटकों एवं अन्य कलाओं की उन्नति के लिए एक परिक्रमी रंगमंच भी स्थापित किया। पत्रकारिता क्षेत्र में सेठ गोविन्ददास ने दैनिक लोकमत, दैनिक जयहिंद तथा जनसत्ता साप्ताहिक पत्रों एवं श्रीशारदा पत्रिका का प्रकाशन किया और उदित साहित्यकारों को आश्रय एवं प्रोत्साहन दिया।

सेठ गोविन्ददास जी की उल्लेखनीय रचनाएँ है-

नाटक : कर्तव्य, कर्ण (पौराणिक), विकास, शशिगुप्त, अशोक, शेरशाह, हर्ष आदि (ऐतिहासिक)

जीवन नाटक : महाप्रभु वल्लभाचार्य, रहीम, भारतेन्दु, महात्मा गांधी, सामाजिक नाटक-विश्वप्रेम, नवरस, सेवा पथ, दुःख क्यों ?, प्रेम या पाप, सिद्धांत स्वातंत्र्य, हिंसा या अहिंसा, गरीबी या अमीरी, प्रकाश।

पाँच एकांकी संग्रह : मुगल कालीन भारत की झलक, सात एकांकी संग्रह- अंग्रेजों का आगमन और उसके बाद, पाँच एकांकी संग्रह- हमारे, मुक्तिदाता, स्पर्द्धा सात एकांकी-सामाजिक, धोखेबाज और दस एकांकी-एक पात्री, प्रहसन-वैदेशिक कथाओं पर आधारित।

काव्य : प्रेमविजय (महाकाव्य), स्नेह या स्वर्ग, पद्यनाटक-शबरी, संवाद सप्तक, पत्रपुष्प।

उपन्यास : इन्दुमती, यात्रावर्णन-हमारा प्रधान उपनिवेश, अफ्रीका यात्रा, सुदुर दक्षिण पूर्व (न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, फीजी, मलाया यात्रा) पृथ्वी परिक्रमा (मिस्र, यूनान, स्विटजरलैण्ड, फ्रांस,इंग्लैण्ड, केनेडा, अमेरिका, जापान, चीन, बर्मा यात्रा)

उत्तराखण्ड की यात्रा, दक्षिण भारत की यात्रा।

संस्मरण साहित्य : आत्मनिरीक्षण, स्मृतिकण

जीवनी : पं. मोतीलाल नेहरू, युगपुरूष नेहरू

भाषण : नाट्यकला मीमांसा, हिन्दी भाषा आंदोलन, साहित्य संकलन-मधुसंचय।

आध्यात्मिक : जीवन क्रांति की दिशा, अथाही ब्रह्म जिज्ञासा।

अंग्रेजी में Five one Act plays, on wings to Anzacs, Indumati अणु और अनन्त।

यद्यपि नाटककार के रूप में ही सेठजी ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की, लेकिन उनकी औपन्यासिक कृति 'इन्दुमती' तथा यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों में 'पृथ्वी परिक्रमा' भी कम चर्चित नहीं है। 'इन्दुमती' उपन्यास 'व्यावहारिक ज्ञान का कोश' कहलाया तो 'पृथ्वी परिक्रमा' को लोकसभा अध्यक्ष स्वर्गीय श्री मावलंकर ने 'विश्व इतिहास का एक ठोस भाग' माना। •

आदर्शवादी, निष्ठावान, सिद्धहस्त नाटककार

डॉ. नगेन्द्र

सेठ गोविन्ददास से मेरा परिचय 20 वर्ष पुराना है। मेरे साहित्यिक जीवन के आरंभ में जिन वरिष्ठ लेखकों ने स्वयं आगे बढ़कर मेरा परिचय प्राप्त किया था- सेठ जी का नाम कदाचित् उनमें सबसे पहले आता है। उस समय उनकी आयु वही थी जो मेरी आज है और मेरी आयु वह थी जो आज मेरे अधिकांश शोध-छात्रों की है, फिर भी जिस सौजन्य और स्नेह से वे पहली बार मुझसे मिले और बाद में सदा मिलते रहे वह उनके अभिजात संस्कारों का सहज परिणाम था। इन बीस वर्षों में सेठ जी के दिल्ली-वास के कारण यह नैकट्य निरन्तर बढ़ता ही गया और उसके साथ ही उनके व्यक्तित्व के अनेक गुणों के प्रति मेरा आदर भाव भी। हमारे साहित्यिक वृत्त में मेरी तरह सेठ जी के अनेक प्रशंसक हैं और उनमें मैं पूज्य दद्दा-राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का नाम सगर्व ले सकता हूँ। अपनी मस्ती के क्षणों में तरह-तरह की बातें कह जाने के बाद भी स्वर्गीय नवीन जी के मन में भी सेठ जी के इन गुणों के प्रति आदर और स्नेह था। सेठ जी के आलोचकों की संख्या कम नहीं है, जो उनके साहित्य को प्राय: बिना पढ़े, और उनके व्यक्तित्व की, एकाध बार मिलकर ही बहुत कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर, आलोचना करते हैं। मैं यहाँ सेठ जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के कुछ ऐसे गुणों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा, जो इन आलोचकों के लिए श्रद्धापूर्वक अनुकरणीय हैं।

सेठ जी का पहला और प्रधान गुण है उनके स्वभाव की सरलता। वे अत्यन्त निश्छल और भोले व्यक्ति हैं। उनका यह भोलापन ही प्राय: उनकी आलोचना का कारण बन जाता है। मन की बात को छिपाना वे नहीं जानते। अपनी कमजोरी छिपाने का उन्हें अभ्यास नहीं है। वे प्राय: इस

* सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व एवं साहित्य से साभार

बात का विवेक करने में असमर्थ रहते हैं कि कौन-सी बात किसके सामने नहीं कहनी है। अक्सर वे अपने मन की ऐसी अनेक अन्तरंग इच्छाओं को हर किसी पर व्यक्त कर देते हैं, जिन्हें व्यवहार-कुशल जन अपने निकट-मित्रों से भी बड़ी सफाई से छिपा जाते हैं। व्यवहार के स्तर पर तो यह दोष ही माना जायेगा, किन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या वह कौशल जो अपने और अपनों से छल कर सकता है- व्यक्तित्व का बहुत बड़ा गुण नहीं है और हृदय की वह सरलता जो अपनी कमजोरी को अपरिचित के सामने भी छिपाने में असमर्थ रहती है, केवल दोष ही रहेगी? वास्तव में छल-छल ही है- चाहे वह व्यवहार में सौन्दर्य लाने के लिए किया जाये या दूसरे की हानि करने के लिए। मिथ्याचरण पर आश्रित व्यवहार की भ्रदता या शील की अपेक्षा मैं हृदय की उस सरलता का अधिक आदर करता हूँ जो अपनी दुर्बलता का उद्घाटन कर उपहास का भी विषय बन सकती है। सेठ जी के स्वभाव की यह सरलता उनके हृदय की शुद्धता का ही संचारी गुण है। सेठ जी मन, वाणी या कर्म से किसी को धोखा नहीं देते। मेरे अनुभव में एक भी घटना ऐसी नहीं आयी जिमें मैंने उनके बचन और कर्म अथवा मन और वचन में किसी प्रकार का भेद पाया हो। उनकी वाणी में स्पष्टता होती है, जिस बात को वे नहीं कर सकते हैं या जो बात उन्हें अच्छी नहीं लगती उसका प्रतिवाद करने में अपने आत्मीय मित्रों के सामने भी नहीं चूकते।

सेठ जी के व्यक्तित्व का दूसरा गुण है कर्मठता। चाहे राजनीतिक संगठन हो अथवा साहित्यिक सेवा-कार्य, एक बार दायित्व ले लेने पर सेठ जी, अद्भुत परिश्रम से, तन्मय होकर उसका निर्वाह करते हैं। उनका दैनिक क्रम नाना प्रकार के रचनात्मक कार्यों से पूरी तरह भरा रहता है और वे ठीक घड़ी के हिसाब से अकलान्त भाव से उसको पूरा करते हैं। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य रूप में प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष रूप में, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान रूप में, उन्होंने दम तोड़कर काम किया है, देश के तूफानी दौरे किये हैं तथा कठिन पद-यात्राएँ की हैं। इनमें कई बार उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है और एक बार तो वे बहुत बीमार हो गये थे। दिल्ली की कुछ एक साहित्यिक संस्थाओं में, जैसे संसदीय हिन्दी परिषद् और भारती-संगम आदि में, मैने उनके साथ काम किया है। इस अवस्था में भी वे- स्वयंसेवक की तरह काम करते हैं। कार्य को संपन्न करने की लगन उनमें इतनी सच्ची और गहरी होती है कि वे अपनी पद-मर्यादा भल जाते हैं और स्वागत-भाषण अथवा अध्यक्षीय कर्त्तव्य से लेकर व्यक्तियों के स्वागत-सत्कार, स्थान-व्यवस्था आदि के संपूर्ण दायित्व का वहन अपने-आप ही करने को तत्पर रह हैं। एक बार उनके अत्यंत रूग्ण हो जाने पर जब डॉक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि निष्क्रिय जीवन का भार ढोना मेरे बस की बात नहीं- बिना काम के मैं जिन्दा रहना नहीं चाहता। मैंने कई प्रसंगों में यह वाक्य उनसे सुना है और यह कोई सूक्ति या आदर्श-वाक्य नहीं है, उनके लिए व्यावहारिक सत्य है।

सेठ जी का जीवन आरंभ से ही आदर्शवाद से प्रेरित रहा है। इसी की प्रेरणा से तरूणावस्था में उन्होंने अपना राजपाट छोड़ दिया था। भौतिक दृष्टि से, हमारे स्वातंत्रय-आंदोलन के इतिहास में, त्याग के इतने बड़े उदाहरण कम ही मिलेंगे। तरूणाई का वह आदर्श वृद्धावस्था में आकर भी कमजोर नहीं पड़ा। जिस आत्मबल के साथ आंदोलन के समय वे अपने पिता का प्रतिवाद कर सके थे, आज भी उसी साहस से सिद्धान्त भेद होने पर वे जवाहरलाल जी का प्रतिवाद भी कर सकते हैं। आदर्श के पीछे प्रत्येक स्थिति में तर्क का अन्वेषण करना सर्वदा संभव नहीं होता। मेरे मन में भी न उनके गौरक्षा-आंदोलन के लिए कोई विशेष संभ्रम का भाव है और जिस उग्र रूप में कभी-कभी वे हिन्दी का समर्थन करते हैं, उसके प्रति भी अपनी आस्था बहुत नहीं जमती। हिन्दी के कारण तो सेठ जी को काफी घाटा रहा है। अहिन्दी क्षेत्रों में तो वे अप्रिय रहे ही हैं, हिन्दी-क्षेत्रों में भी हम जैसे अनेक बुद्धिवादी बहुत दूर तक उनका साथ नहीं दे पाये। परन्तु आदर्श का महत्व उसकी उपयोगिता के कारण नहीं होता- आदर्श का मूल्य तो तज्जन्य आत्मबल एवं चरित्रबल पर ही निर्भर रहता है।

सेठ जी बड़े संतोषी व्यक्ति हैं। कभी-कभी बड़ी साधारण सी बातों के लिए उनको आतुर देखकर इसके विपरीत भ्रम हो सकता है, किन्तु यह आतुरता उनकी सरलता का ही परिणाम होती है। जीवन के गंभीर स्तर पर अभाव और असफलता का वे अत्यंत धीर-भाव से सामना करते हैं। कारण चाहे कुछ भी रहे हों,- (एक कारण उनका हिन्दी-प्रेम भी है) राजनीतिक क्षेत्र में उनके त्याग और तपस्या को देखते हुए उपलब्धि अत्यंत नगण्य ही है- जो उन्होंने दान किया है उसकी तुलना में प्रतिपादन क्या मिला है? वे अथवा उनके परिवार-जन कहीं अधिक की आशा न्यायपूर्वक कर सकते थे और उचित प्रतिदान के अभाव में असंतोष और कुंठा का शिकार बन सकते थे। जिस प्रकार अनेक कर्मठ और तपे हुए सहकर्मी दूसरे शिविर में चले गये, उसी प्रकार वे भी जा सकते थे। किन्तु उनकी निष्ठा कभी विचलित नहीं हुई और न उनके मन में कभी कड़ुवाहट आयी। जो व्रत उन्होंने अपने तरूण जीवन में आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व लिया था उस पर आज भी उसी विश्वास के साथ अग्रसर हैं। मैंने कभी उन्हें निराश या क्षुब्ध नहीं देखा- जो मिला उसका अत्यन्त कृतज्ञभाव से ईश्वर का वरदान मानकर ग्रहण किया और जो नहीं मिला उसके लिए कभी संताप नहीं किया। जब कभी उनके मित्र यह प्रसंग छेड़ते हैं कि उन्हें अपने त्याग का उचित प्रतिदान नहीं मिला तो वे पूर्ण सद्भाव से उत्तर देते हैं कि मेरे लिए सब से बड़ा प्रतिदान तो देश की स्वाधीनता है जो मुझे अपने जीवन में ही मिल गयी, अन्य उपलब्धियाँ तो आनुषंगिक हैं। इस संतोष और निष्ठा का मूल कारण है सेठ जी की आस्तिकता। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षा लेने के बाद वे पूरी आस्था से अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। वैष्णव भावना उनके लिए परम्परा या रूढ़ि नहीं है, हृदय की वृत्ति है। उनकी कर्मठता और व्यावहारिक जीवन-दृष्टि को देखकर कभी-कभी यह भ्रम हो सकता है कि उनका हृदय-पक्ष कदाचित् समृद्ध नहीं है, परन्तु मैंने अनेक व्यक्तिगत और सार्वजनिक प्रसंगों में उन्हें भाव गद्गद् होते देखा है। मेरा विश्वास है कि इसी आस्था के कारण राजनीति के चक्रव्यूह में फँसकर भी वे अपनी सरलता की रक्षा कर सके हैं और अनेक अभावों का सामना करने पर भी स्वभाव के मार्दव से वंचित नहीं हुए।

साहित्य के क्षेत्र में सेठ जी की उपलब्धि अपेक्षाकृत अधिक मानी जा सकती है। यद्यपि वे सभी कारण जो राजनीतिक जीवन में बाधक रहे, यहाँ भी न्यूनाधिक रूप में उपस्थित रहे, फिर भी साहित्य का मार्ग कहीं अधिक सरल है। इसलिए साहित्य में अपना उचित स्थान प्राप्त करने में उन्हें विशेष बाधा नहीं हुई। अनेक सीमाओं के रहते हुए भी प्रसाद-परवर्ती हिन्दी-नाट्य साहित्य में उन्हें अत्यन्त सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। साहित्यिक उपलब्धि के अन्तर्गत कुछ लोग रचना-परिणाम की भी गणना करते हैं। सामान्यत: मैं इसका बहुत कायल नहीं हूँ, परन्तु यह भी एक दृष्टिकोण है ही। नाट्य गुण की दृष्टि से अनेक पूर्ण नाटक 'शशिगुप्त', 'शेरशाह' आदि, वस्तु-कल्पना की दृष्टि से 'कर्तव्य' और भाव-सौन्दर्य तथा शिल्प की दृष्टि से 'शाप और वर' आदि लघुतर कृतियाँ आधुनिक हिन्दी नाटक में निश्चय ही विशिष्ट स्थान के अधिकारिणी हैं। •

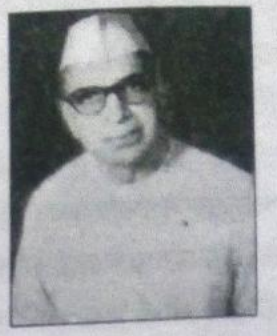

उपदेशक नहीं कलाकार और यथार्थता के कलाकार

व्यौहार राजेन्द्र सिंह

'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' से जान पड़ता है कि वाक्यों का रसात्मक रूपक ही काव्य है और 'काव्येषु नाटकं रम्य' से प्रकट होता है कि काव्य का भी रमणीय रूप नाटक है। वैसे नाटक भी काव्य का ही एक अंग माना गया है और श्रवण की मधुरता के कारण काव्य को श्रव्य काव्य और दर्शन की रमणीयता के कारण नाटक को दृश्य काव्य कहा गया है। चाहे यह परिभाषा एकांगी भले ही हो, किन्तु इसमें दोनों के मुख्य लक्षणों का वर्णन आ जाता है। काव्य का अंग माने जाने ही के कारण प्राचीन संस्कृत नाटकों में हमें लम्बे-लम्बे कवित्वपूर्ण वर्णनों की भरमार तथा श्रवण-सुखद समासबद्ध संवादों की प्रचुरता मिलती है। क्या भारत और क्या यूरोप सभी जगह नाटक इसी प्रकार के होते थे।

एक समय आया जब नाटकों को श्रवणीय की अपेक्षा अधिक दर्शनीय बनाने की ओर प्रवृत्ति हुई। और इसी कारण आधुनिक नाटकों में पद्य की अपेक्षा गद्य का प्राधान्य हुआ- हिन्दी में तो भारतेन्दु-युग तक यह प्रथा (पद्य के आधिक्य की) चलती आयी और पारसी नाटक कम्पनियों के कई नाटकों में अभी तक पायी जाती है। यूरोप में इस सुधार के नेता प्रसिद्ध नाटककार इब्सन हुए। जिनका अनुकरण प्रायः सभी देशों के नाटककारों ने किया। नाटकों का विवेचन करने के लिए उनके उद्देश्यों की कुछ चर्चा आवश्यक है।

नाटककार का काम उपदेशक का है अथवा कवि का ? यदि हम ऊपर कहे हुए नाटक के मुख्य लक्षण रमणीयता को ध्यान में रखेंगे तो नाटककार कवि के अधिक समकक्ष होगा। बल्कि श्रवण की अपेक्षा दर्शन अधिक शीघ्र परिणामजनक होने के कारण नाटक जनता के चित्त पर करने

• सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व एवं साहित्य से साभार

अधिक स्थायी प्रभाव उत्पन्न करने वाला सिद्ध होगा। चाहे हम नाटक का उद्देश्य जनता को शिक्षा देना अथवा उसका मनोरंजन करना- कुछ भी मानें, किन्तु परिणाम की दृष्टि से नाटक दोनों का उत्तम साधन है। रस्किन के शब्दों में- 'मैं तो उस वस्तु को कला की सब से महान वस्तु मानता हूँ जो किसी भी मार्ग द्वारा हृदय में सब से अधिक महान विचारों को उत्पन्न कर सके।'

इस प्रकार यदि महान विचारों को उत्पन्न करना ही हमारा उद्देश्य है तो उसके लिए सब से उत्तम मार्ग खोजना होगा और यह निर्विवाद है कि काव्य अपनी रसात्मकता के द्वारा महान विचारों को जितना ग्राह्य नहीं बना सकता उससे भी अधिक नाटक अपनी रमणीयता के कारण उन्हें चित्त-पटल पर स्थाई कर देता है काव्य में जो बात मानसिक अप्रत्यक्ष रहने के कारण छायामात्र रहती है वह नाटक के चाक्षुष प्रत्यक्ष के कारण स्पष्ट चित्र बन जाती है। मेरे विचार से तो नाटककार कवि ओर चित्रकार दोनों की सम्मिलित और इसी कारण दोनों से अधिक प्रभावशाली मूर्ति है। कवि के भावचित्रण में रेखाओं की जो कमी रहती है तथा चित्रकार के रेखा-चित्रण में शब्दों की जो कमी रहती है। नाटककार रंग-मंच पर अपनी मुखर-मूर्तियों द्वारा उसकी पूर्ति कर जन-मन पर एक अमिट छाप लगा देता है।

प्राचीन काल से नाटक शिक्षा की अपेक्षा मनोरंजन के ही साधन अधिक रहे। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वे 'गुरू सम्मित' उपदेश-परम्परा की अपेक्षा 'कान्ता सम्मित' उपदेश प्रणाली के प्रतीक रहे। वे रमणीयता के भीतर छिपा हुआ ऐसा उपदेश दे जाते हैं जो कि अन्त: मानस पर छिपे-छिपे अपनी छाप लगा देता है। इस प्रकार उपदेश या मनोरंजन दोनों की दृष्टि से नाटकों का विशेष महत्व है।

हाँ, तो हम नाटक में परिवर्तन की चर्चा कर रहे थे। युग के साथ प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन होता है। जिस किसी ने इस युग को 'त्वरा युग' कहा है उसने इस युग का यथार्थ चित्र खींचा है। प्रत्येक वस्तु में हमें समय-संकोच रहता है। इसलिए जिस संकोच ने थोड़े समय में अधिक दूर ले जाने वाले त्वरितवाहनों, थोड़ी देर में अधिक काम करने वाले त्वरायंत्रों तथा अधिक आदमियों की जगह थोड़े आदमियों से काम चलानेवाले श्रमसंकोचक यंत्रों को जन्म दिया, उसी समय संकोच ने साहित्य में बड़े उपन्यासों की जगह कहानियों, महाकाव्यों की जगह स्फुट कविताओं बड़े चरित्रों की जगह जीवनियों तथा बड़े नाटकों की जगह एकांकी नाटकों को जन्म दिया।

वैसे तो प्राचीन भारत तथा ग्रीस आदि में भी पुरातन काल में भी एकांकियों का उल्लेख मिलता है किन्तु उनका आधुनिक ढंग से विकास इसी युग की देन है।

किन्तु यह समयकृत परिवर्तन हुआ, व्यक्तियों द्वारा नहीं। इब्सन तथा पिनेरो आदि नाट्यकारों द्वारा पुरानी अभिनय परिपाटी, पुराने काव्यमय सम्वादों, पुराने लम्बे-लम्बे कथानकों, मनोरंजनों, प्रदर्शनों आदि बातों में परिवर्तन करने का अर्थ भी नाटकों को अधिक स्वभाविक बनना तथा जीवन के अधिक समीप लाना है। प्राचीन काल के सम्पूर्ण नाटकों से भी अधिक एकांकी नाटकों का मुख्य उद्देश्य केवल मनोरंजन या श्रृंगार वर्णन करना ही था जैसा कि भाण, प्रहसन तथा बीथी आदि में प्रकट है। उसी प्रकार युरोप के पन्द्रहवीं सदी के आफटर पीसेज तथा अठारहवीं सदी के कर्टेन रेजर आदि में भी बड़े नाटकों के आरम्भ, मध्य या अन्त में मनोरंजन ही करना मुख्य उद्देश्य होता था। नवीन परिवर्तन में केवल मनोरंजन के बदले किसी खास समस्या को लेकर मनोरंजक ढंग से उपस्थित करना एकांकी नाटकों का काम हो गया।

आधुनिक काल में हिन्दी के नाट्य साहित्य में तीन युग माने जा सकते हैं- भारतेन्दु युग, प्रसाद युग तथा आधुनिक युग। भारतेन्दु ने प्राचीन परिपाटी के अनुसार, पौराणिक ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। प्रसाद ने प्राचीन गद्य-पद्यमय परिपाटी तो छोड़ दी किन्तु गद्य ही को सांकेतिक बनाने की परिपाटी शुरू की। उसके बाद आधुनिक काल में एकांकी नाटकों का विकास होना शुरू हुआ है। इस समय में सेठ गोविन्ददास, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि प्रमुख हैं। सांकेतिक तथा रहस्यमयी भाषा छोड़ कर जनसाधारण के

जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कथानकों को हाथ में लेने वालों में शायद सेठ गोविन्ददास का विशेष स्थान है।

एकांकी नाटकों की विशेषता क्या है? कथावस्तु, परिस्थिति तथा व्यक्तित्व के निदर्शन में मितव्ययिता और चातुरी ही एकांकी नाटकों की विशेषता मानी गई है। आकार का केन्द्रीकृत प्रभाव तथा वैयक्तिक और स्थानिक विशेषताओं की केवलता ही एकांकी नाटकों को अधिक सुन्दर बना देती है।

सेठजी ने अपने 'सप्त-रश्मि' नामक एकांकी नाटक संग्रह के प्राक्कथन में एकांकी नाटकों की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया है जिसमें उनकी नाट्य कला पर भी प्रकाश पड़ता है- यूनान के नाटककारों ने जिन तीन सिद्धांतों की स्थापना की थी वे इस प्रकार हैं- 1. नाटक घटना का स्थान एक ही हो 2. उसकी अवधि भी एक दिन की घटना तक परिमित हो और 3. वह एक ही कृत्य के सम्बन्ध में हो।

इन्हें हम संक्षेप में स्थल-संकलन, काल-संकलन तथा कृत्य-संकलन भी कह सकते हैं। इसे 'समक' या संकलन त्रय कहते हैं। सेठजी ने भी इसी आधार पर अपने एकांकी नाटकों की रचना की है और इन्हें निबाहने पर पूरा ध्यान दिया है। सेठजी की दृष्टि में स्थल-संकलन उतना आवश्यक नहीं किन्तु काल-संकलन अनिवार्य है अर्थात् नाटक की घटनाओं को लगातार थोड़े समय के अन्तर में ही होती रहना चाहिए। किन्तु ऐसे अवसर आ सकते हैं जब घटनाओं के बीच में अधिक काल व्यतीत हो जावे। अत: उसके लिए सेठजी ने एक सुन्दर उपाय से काम लिया है। एक ही समय में होने वाली घटना को बीच के दृश्यों में रख कर मुख्य घटना के पहले होने वाली घटना को उपक्रम तथा बाद की घटनाओं को उपसंहार में रख कर इस काल संकलन में आपने व्याघात नहीं आने दिया है। कभी-कभी काल-संकलन रहते हुए भी सेठजी ने उपक्रम और उपसंहार का प्रयोग किया है। 'अधिकार लिप्सा' नाटक में उपक्रम और उपसंहार के बीच में मुख्य दृश्य की योजना बड़ी ही सुन्दर हुई है। आपने एक पिछले नाटक 'प्रकाश' में भी इस प्रकार उपक्रम और उपसंहार का प्रयोग किया है। सेठजी ने काल-संकलन की रक्षा के लिए जो उपाय सुझाये है वह अवश्य ही अन्य नाटककारों का पथ-प्रदर्शक होगा।

उनके नाटकों में काल-संकलन के साथ स्थल संकलन तथा कृत्य-संकलन भी पूरी तौर से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्राय: एक विचार को ही लेकर उन्होंने अपने एकांकी नाटक लिखे हैं। इस संग्रह के प्रथम नाटक 'धोखेबाज' में सट्टा से होने वाली हानियों का मनोरंजक और शिक्षाप्रद प्रदर्शन है। 'कंगाल नहीं' में एक पुराने राजघरानों को मजदूरी तक न मिलने का करूणाजनक दृश्य है। 'वह मरा क्यों' में अनुभवहीन अधिकारी की विचित्र कल्पनात्मक झाँकी है। 'अधिकार-लिप्सा' में अधिकार की रक्षार्थ अपने प्राण तक गवाँ बैठने वाले रईस की मनोवृत्ति का पता लगता है। 'ईद और होली' में दो अबोध बालकों के प्रेम के द्वारा हृदय-परिवर्तन बतला कर हिन्दू मुसलमान एकता का पदार्थ-पाठ दिया गया है। 'मानव मन' में रूग्ण पति की लम्बी बीमारी से ऊब कर पति परायण पत्नी की भी मनोवृत्तियों में कैसा परिवर्तन हो सकता है इसका चित्र है। अन्तिम नाटक 'मैत्री' में दो स्नेही हृदयों के बीच क्षुद्र स्वार्थ के कारण भेद पड़ने और फिर उस पर लात मार एक अभिन्न हृदय हो जाने का सुन्दर चित्रण है।

सेठजी ने एकांकी नाटकों के लिए जो सिद्धान्तवाक्य रखा है वह इस प्रकार है-

'जिस एकांकी नाटक में जितना बड़ा विचार होगा उस विचार के विकास के लिए जितना स्पष्ट और तीव्र संघर्ष होगा, उस विचार और संघर्ष के लिए जितनी स्पष्ट और मनोरंजक कथा होगी, जितने कम चरित्र और उन चरित्रों का जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा तथा जितनी स्वाभाविक कृति एवं कथोपकथन होंगे वह उतना ही सफल होगा।'

आइये, अब इसी कसौटी पर हम स्वयं सेठजी के एकांकियों को कसें। विचारों के विषय में तो हम देख चुके विचार-संघर्ष हमें 'मैत्री' तथा 'मानव-मन' में सबसे अधिक दिख पड़ता है। 'धोखेबाज' की कथा सबसे मनोरंजक है। पात्रों की संख्या सेठजी के नाटकों में कम से कम तीन और अधिक से अधिक दस हैं। चरित्रों का चित्र

चित्रण 'अधिकार लिप्सा' और 'धोखेबाज' में अच्छा हुआ है। स्वाभाविकता जो इन सब बातों में प्रधान है प्राय: सभी नाटकों में फूटी पड़ती है। 'प्राय:' कहने का यह अर्थ कि 'मानव-मन' में पति की बीमारी से ऊब कर भारतीय नारी का उसकी मृत्यु की इच्छा करना जरा अस्वाभाविकता जान पड़ता है। रहे कथोपकथन, सो उनकी स्वाभाविकता तो मुहाविरेदार भाषा तथा पात्रों से उनकी निजी बोली बोलवाने से और भी बढ़ गयी है।

नाटकों के कई वाक्य बड़े मार्मिक हैं-

बड़े राजा- माँ, पिनसन मिलती है। हम महाराजाधिराज राजाराजेश्वर संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती के कुल के हैं। हमारी बड़ी इज्जत है, हमारा बड़ा मान है, हमारी आमदनी चाहे तीन पैसा रोज ही हो पर हमें कंगालों की रोजन्दारी दो आना रोज कैसे मिल सकती है ? (कंगाल नहीं)।

राजा के वंशजों को मजदूरी तक न देकर उनके 'मान और इज्जत' की बात करना कितनी मर्मान्तिक वेदना पहुँचाता है।

कृष्णावल्लभ- अभी भी तुम्हें आशा है, प्रिये ? आशा की जगह न होते हुए भी कई दफा मनुष्य आशा को मन में रखने का बलात्कार करना है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा देने की कोशिश करना है। यह झूठी आशा है। (मानव मन)।

दानमल- सट्टा फाटका ? हाँ सट्टा फाटका ! कितने बने इस सट्टे फाटके में। इस समय के सभी दानवीर तो। सट्टा फाटका- याने जुआ और ये सब जुआड़ी। कौन इन जुआड़ियों का मान नहीं करता? कौन इन धनवानों की इज्जत नहीं करता ? बड़े-बड़े समाज सेवक, बड़े-बड़े राजनैतिक नेता... अरे-अरे! सभी तो, इनके चारों ओर घूमते हैं। इनकी पद-वन्दन करते हैं। (धोखेबाज)।

'अधिकार लिप्सा' में वैद्य, तांत्रिक तथा डॉक्टरों की अपनी-अपनी विशेष बोलियों में अपने विषयों का प्रतिपादन बड़ा ही विनोद उत्पन्न करती है जैसे-

गंगाधर राव- 'विशुद्ध कूप जल एक मृतिका के पात्र मध्य अग्नि पर धरिए। जब अर्ध भस्म हो जाय तब शेष अर्ध को रजत पात्र में शैन: शनै: शीतल का सुवर्ण के चम्मच से तृषाकाल बीच दीजिए।'

इस प्रकार यह संग्रह हास्यरस प्रधान होने पर भी इसमें श्रृंगार और शान्त रसों का भी आस्वाद मिल जाता है। कहा जा चुका है कि प्रारम्भ काल में एकांकियों का उद्देश्य मनोरंजन करना था, किन्तु इस शिष्ट विनोद के भीतर से भी हमारे हृदय में सट्टा की बुराइयों तथा अधिकार लिप्सा के प्रति जो घृणा के भाव उत्पन्न होते हैं वे अमिट हैं, क्योंकि इनके नायकों का अन्त मृत्यु में दिखा कर लेखक ने इनकी विफलता का चित्र हमारे हृदय में स्थायी कर दिया है।

गोविन्ददास जी अपने आसपास के जीवन को जैसा पाते हैं उसी प्रकार उसे उपस्थित कर देते हैं और वह भी सरल भाषा और थोड़े शब्दों में। वे सरल और स्वयं सिद्ध सिद्धांतों को सीधे औरसरल तरीके से उज्जवल नाटकीय रूप में उपस्थित करते हैं, उनमें कोई गूढ़ रहस्यवाद नहीं होता, उनका मतलब वही होता है जो वे कहना चाहते हैं। वे कोई सुधारक या मसीह बन कर नहीं उतरते। वे यथार्थता के कलाकार हैं। उनके चरित्र अति प्राकृत देवता या दानव नहीं है बल्कि जीते जागते गुण दोषमय मानव हैं। उनके नाटक यथार्थता की प्रतिकृतियाँ हैं, आदर्श के अनुकरण नहीं। इब्सन के शब्दों में 'नाटक का काम कोई प्रश्नों का उत्तर देना नहीं बल्कि स्वयं प्रश्न पूछना है। उनका काम मानव का चित्रण है मानव मनोविकारों का चित्रण है, सामाजिक परिस्थितियों के बीच उनके मानसिक संघर्ष का चित्र कला है। उनका काम शब्दों के द्वारा आपको सुनने के लिए, बाध्य करना है। अनुभव करने के लिए बाध्य करना, और देखने के लिए बाध्य करना है।' हम यह कहने में गौरव अनुभव करते हैं कि सेठजी इब्सन के इस आदर्श की और उत्तरोत्तर बढ़ते चले जा रहे हैं। •

एक ऐतिहासिक दृष्टि

सबसे पहले मैं आपको इस सुन्दर रचना के लिये बधाई देना चाहता हूँ। इस उपन्यास के माध्यम से आपने इस देश के पिछले पचास-साठ वर्षों की तूफानी हलचलों का बहुत सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। इन्दुमती का बहुत दृढ़ चरित्र अंकित हुआ है और यद्यपि कुछ अवस्था की बढ़न्ती के साथ उसमें चारित्रिक शैथिल्य आया है तथापि वह अध्याय पूरा-का-पूरा उसके चरित्र का क्षेपक अंश ही लगता है। वह उसके सीधे विकसित होने वाले चरित्र में परिस्थिति के दबाव से उत्पन्न बांकपन मात्र है। इस शैथिल्य की मुझे बिल्कुल शिकायत नहीं है। शिकायत अगर है तो यह कि समूचे उपन्यास में जो तूफानी हलचलें इतने विस्तार से आई हैं उन्होंने इन्दुमती के चरित्र को और भी अधिक क्यों नहीं दबाया। परिस्थितियों के इतने गतिशील बोझ को इन्दुमती आसानी से सम्हाल ले गई है। कम स्थलों पर उसमें झुकाव, लोच या बांकपन दिखाई देता है। इन्दुमती का पूरा चरित्र इकहरा है। उसका विकास मार्ग सरल है। देश के भीतर निरन्तर घटती रहने वाली घटनाओं की भीड़ के भीतर से वह अपना रास्ता अनायास निकाल लेती है- ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रईस की मोटरकार भीड़ में से अपना रास्ता अनायास निकाल लेती है। बाहर की हलचलें बहुत कम स्थलों पर अप्रत्याशित पात्रों और अनाशंकित घटनाओं को उसके मार्ग में ला खड़ा करने में समर्थ होती हैं। उसकी तुलना में ललित मोहन कुछ फीका-फीका लगता है। उसके श्वसुर (रामस्वरूप) का चरित्र उतना फीका नहीं है। उसमें अधिक दृढ़ता है और रंगीनी तो कुछ-न-कुछ है ही। इन्दुमती के सम्पर्क में जो थोड़े से पात्र आ गए हैं उनमें वजीरअली भी बहुत आकर्षक हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

• सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व एवं साहित्य से साभार

इन्दुमती के वैधव्य-जीवन को आपने अपने ढंग का अनूठा ही चित्रित किया है। इसे धक्कामार परिस्थितियों और विचारों की अवतारणा का साधन बना कर आपने अपने देश के सामाजिक उपन्यासों में एक नये प्रयोग का सूत्रपात किया है। मैं समझता हूँ, यदि पाठक इस नवीन प्रयोग की भूमिका से कुछ अप्रत्याशित और अनुभूत मनोवैज्ञानिक परिणतियों की आशा करें तो आप उसे रोकना पसंद नहीं करेंगे। मैंने आशा लगाई थी कि कहीं-न-कहीं इन्दुमती के जीवन में ऐसा कुछ तत्व आएगा, जो 'इबनार्मल' कहा जा सकेगा। परन्तु मेरी आशा पूरी नहीं हुई। अनासक्त बीजाधान-जो केवल शरीर प्रक्रिया मात्र है-उन प्राणियों में एक प्रकार का होता होगा जिन में मन का उस प्रकार विकास नहीं हुआ है जितना मनुष्य में और मनुष्य में दूसरे प्रकार का होता होगा। यह मेरा विश्वास है। इसकी सचाई के बारे में मुझे कुछ निश्चय-सा ही है। विधाता ने पुरुष और नारी के पारस्परिक आकर्षण में जो मानसिक स्निग्धता दी है उसके अभाव में कहीं-न-कहीं कुछ-न-कुछ कमी रह जानी चाहिए। मयंक में वह कमी नहीं आई है। उसकी आगे की जो मानसिक प्रक्रिया है वह सामाजिक विचारों के दबाव से उत्पन्न हुई है। उसमें अप्राकृत अनासक्त बीजाधान की कोई प्रतिक्रिया स्पष्ट नहीं हुई। परन्तु यह तो मैंने आशा लगाई थी। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस प्रकार आशा लगा कर हम लेखक को अनुध्यान मार्ग से हटने को बाध्य नहीं कर सकते।

मैंने ऊपर लिखा है कि वीरभद्र वाला प्रसंग इन्दुमती के इकहरे जीवन का क्षेपक है। क्योंकि यहीं परिस्थितियों के दबाव से उसके चेहरे पर जरा-सी शिकन पड़ी है। यहीं वह झुकती है, यहीं वक्र होती है, और यहीं वह भाग्य पर विश्वास करने लगती है। जैसे एकाएक सूखे बांस में हरियाली आ गई हो। यह क्या पूर्ववर्ती अपप्रयोग की शारीरिक प्रतिक्रिया है? ऐसा नहीं जान पड़ता। शायद यह प्रसंग बताता है कि इस लड़की के जीवन में भीतर-ही-भीतर भयंकर मानसिक दुर्बलताएँ अरसे से संचित होती आ रही थीं, वीरभद्र के प्रसंग में वे एकाएक फट पड़ी हैं। ऐसा न माना जाय तो इस आकस्मिक विस्फोट को अवास्तविक मानना पड़ेगा। कहीं-न-कहीं यह दुर्बलता थी जरूर। वजीरअली और त्रिलोकीनाथ को इस दुर्बलता का कुछ भी पता नहीं था। होता तो पाठक को भी कुछ तैयार हो लेने का अवसर मिलता।

यद्यपि देश की तूफानी हलचलें केन्द्रीय चरित्र को कम आन्दोलित या विचलित कर पाती हैं, पर उनके विस्तार से पाठक की जिज्ञासा वृत्ति अवश्य ही परितुष्ट होती है। 'इन्दुमती' उपन्यास अनेक सामाजिक समस्याओं के मूल उत्स को समझने की ऐतिहासिक दृष्टि देता है। आज के जटिल सामाजिक जीवन को जो प्रश्न निरन्तर चुनौती दे रहे हैं उनके वास्तव रूप को स्पष्ट भाव से समझाने में यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

त्रिलोकीनाथ, वजीरअली, रामस्वरूप, सुलक्षणा आदि पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ बहुत आकर्षक हुई हैं। इन पात्रों के सम्पर्क से जिस अन्तर्वैयक्तिक संबंध परम्परा का सूत्रपात होता है वह क्षीण होने पर कथानक सूत्र को मजबूत करने में सहायक है। इस सुन्दर सुपात्र रचना को प्रस्तुत करने के लिए मैं फिर एक बार आपको बधाई देता हूँ। •

समग्र साहित्य में कवित्व की झलक

रामधारीसिंह दिनकर

जब हम लोग साहित्य का रस लेने की उम्र में पहुँचे, तब तक हिन्दी में छायावाद की स्थापना हो चुकी थी और युवक-संप्रदाय द्विवेदी काल की रचनाओं से मुँह मोड़कर नयी कविता को अपनाने लगा था। ठीक उन्हीं दिनों सम्मेलन ने नवीन पद्य-संग्रह के नाम से आधुनिक कविताओं का एक संकलन प्रकाशित किया जिसे अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। उसी संग्रह में मैंने पहले पहल सेठ गोविन्ददास जी की 'जन्मभूमि प्रेम' नामक वह कविता पढ़ी जो इस संग्रह में मौजूद है। सेठ जी की वह कविता उन दिनों काफी पसन्द की गयी थी। कारण, एक तो उसमें देश-भक्ति के भाव थे जिनके लिए जनता में बहुत उत्साह था, दूसरे, उस कविता की भाषा भी काफी अच्छी और अभिव्यक्तियाँ बहुत साफ थीं।

उसके बाद भी सेठ जी की कविताएँ जहाँ-तहाँ देखता रहा। किन्तु, धीरे-धीरे सेठ जी का कवि-रूप दबने लगा और वे अधिकाधिक नाटककार के रूप में विख्यात होने लगे। आज की स्थिति यह है कि हिन्दी-साहित्य के इतिहास ने असंदिग्ध रूप से उनका नाम नाटककारों की सूची में अंकित कर लिया है और लक्षण ये हैं कि आगे भी गोविन्ददास जी इसी रूप में याद किये जायेंगे।

नाटकों के अलावा, सेठ जी ने कहानियाँ भी लिखी हैं और उपन्यास भी। इधर हाल में उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखकर भी हिन्दी को बड़ा अवदान दिया है। और इस समग्र साहित्य में सेठ जी का कवित्व झलक मारता है। एक समय सारे साहित्य को काव्य कहने की परिपाटी थी। पर, अब काव्य कई धाराओं में बहने लगा है, किन्तु, कवित्व की थोड़ी-बहुत मात्रा प्रत्येक धारा में रहती है। फर्क यह है कि कवित्व की मात्रा कविता में सबसे अधिक, नाटक में उससे कम और उपन्यास में सबसे कम होती है।

प्रस्तुत संग्रह गोविन्ददास-ग्रन्थावली का आठवाँ भाग है और यह उनकी सभी कविताओं का संकलन है। स्पष्ट ही, इन कविताओं का समय

• सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व एवं साहित्य से साभार

समाप्त हो गया और अब उनका ऐतिहासिक महत्व भर शेष है। किन्तु, प्रत्येक कविता एक समय आकर इतिहास की सामग्री बन जाती है और बीते हुए युगों के सारे साहित्य का सबसे बड़ा महत्व ऐतिहासिक ही होता है।

इतिहास की दृष्टि से देखने पर इस संग्रह की सभी कविताएँ द्विवेदी युग का प्रतिनिधित्व करती हैं खड़ी बोली की कविता जब परम्परा से किंचित् हट कर अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर रही थी, तब उसने संस्कृत वृत्तों का भी आश्रय लिया था। पं. रामचरित उपाध्याय, पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय, पंडित रूपनारायण पाण्डेय, महाकवि हरिऔध जी के 'प्रियप्रवास' में खड़ी बोली-कविता की यह प्रवृत्ति अपने चरम विकास पर दिखायी देती है।

श्री गोविन्ददास भी उन दिनों संस्कृत वृत्तों के बड़े प्रेमी थे और इन वृत्तों में उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह काफी सुन्दर उतरा है। सच पूछिये तो मुझे तो सेठ जी की ही कविताएँ सबसे अच्छी लगती हैं जो संस्कृत वृत्त में लिखी गयी हैं-

शार्दूल चर्म तनु उत्तर भाग में है,
पूर्वार्ध में धवल भस्म विराजती है,
स्नात तथा भुवन भास्कर कान्ति में हो,
प्राची प्रकाशित प्रभा स्वर्णाभ ऊषा।

(प्रेम-विजय)

अथवा

अम्बोधि के सलिल में प्रतिबिम्बिता हो
द्वारावती अनुपमेय विराजती यों,
पादाब्ज युग्म हरि के अवलोकने को
पाताल से निकल ऊपर आ रही हो।

ये पंक्तियाँ काफी स्वच्छ और परिमार्जित हैं तथा उनके भीतर कल्पना भी उत्तमकोटि की उतरी है। दूसरे उदाहरण का 'अम्बोधि' शब्द, कदाचित्, चिन्त्य है, किन्तु, शेष बातों में ये पद द्विवेदी युगीन काव्य के अच्छे से अच्छे रूपों के उदाहरण हैं। इसी प्रकार 'शबरी', 'संवाद-सप्तक' आदि कविताओं में प्रयुक्त भिन्न-तुकान्त छन्द भी काफी अच्छा है।

'संवाद-सप्तक' नामक काव्य की बड़ी विशेषता यह है कि वह चिन्तन प्रधान है। नारी-नर, धर्म-विज्ञान, न्याय और प्रेम, ये ऐसे द्वन्द्वात्मक विषय हैं जो बहुत-से चिन्तकों को झकझोरते रहे हैं। सेठ गोविन्ददास जी ने भी इन विषयों पर जो चिन्तन किया है वह बहुत ही मनोरम और स्वच्छ है। स्पष्ट ही, उनके चिन्तन के परिणाम विप्लवी नहीं हैं। वे समन्वय के प्रेमी हैं और प्रत्येक द्वन्द्व का समाधान उन्होंने किसी न किसी प्रकार के समन्वय में ही प्राप्त कर लिया है।

धर्म और विज्ञान के बीच जो खाई बनी है उसे पाटने का उपदेश ब्रह्मा यह कह कर देते हैं-

धर्म! तेरा कार्य अन्तःशुद्धि है मनुष्य की,
सदय, परोपकारी उसको बनाना है।
हे विज्ञान? तू भी अब मिल कर धर्म से,
कर इस भाँति कर्म, जगती में जिससे।
नाश हो न, तेरे उपयोग में विकास हो।।

इसी प्रकार, न्याय और प्रेम के बीच जो संघर्ष है उसका समाधान बताते हुए विष्णु न्याय से कहते हैं-

अस्तु, बढ़, मैत्री कर मिलके तू प्रेम से,
राजा व रईस जो भी ऐसा करे जिससे।
हानि हो, उन्हें तू दण्ड दे, परन्तु प्रेम से,
और सदुद्देश्य हो सुधार सच्चा उसका।

और नर-नारी के बीच जो द्वन्द्व है उसका समाधान भी समन्वय में ही है।

दोनों एक दूसरे के पूरक हैं सृष्टि में,
दोनों के मिलन में ही पूर्णता है दोनों की,
होकर अलग दोनों आधे रह जाते हैं।

सेठ श्री गोविन्ददास जी बड़े ही कर्मठ और लगनशील पुरूष हैं। हम लोगों के तो वे परम श्रद्धेय हैं। उनके व्यक्तित्व का ऊपरी रूप आरम्भ से ही राजनैतिक रहा है, किन्तु उनका भीतरी व्यक्तित्व जो उनका असली रूप है, शुद्ध साहित्यमय है। यह काव्य-संग्रह सेठ जी की आत्मा के रस का कोष है। मन से द्विवेदी-काल में पहुँचकर मैंने इन कविताओं से काफी आनन्द पाया है। गोविन्ददास जी के काव्यतर साहित्य को समझने के लिए एक बार इस काव्य-संग्रह को देख जाना अत्यन्त उपयोगी होगा। •

साहित्य और वाङ्मय की स्थायी कृति

सेठ गोविन्ददास का आत्म-निरीक्षण गांधी युग की एक अद्भुत उपज है। सुख मे समस्त साधनों से पूर्ण एक राजा के परिवार में जन्म लेकर सेठ जी ने अद्भुत त्याग और तपस्या के बल पर अपने जीवन का मार्ग स्वयं निश्चित किया और रास्ते के विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुये उन्होंने आज देश के प्रथम श्रेणी नेताओं में स्थान प्राप्त किया है। उनकी जीवन कथा बड़ी ही रोचक है। देश के युवकों का वह मार्ग-प्रदर्शन करेगी।

सेठ गोविन्ददास ने अपने समय का बहिर्जगत और अपना अन्तर्जगत दोनों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। वे कवि, उपन्यासकार, नाटककार, प्रभावशाली वक्ता और अध्ययनशील संसद-सदस्य हैं। इससे उनकी भाषा में विषयानुकूल सौन्दर्य तो स्वभावत: व्याप्त है।

युवकों के लिए 'आत्म-निरीक्षण' बड़ी ही उपयोगी और पठनीय-पुस्तक है। •

रामनरेश त्रिपाठी

आदर्शों के प्रति असाधारण निष्ठा वाले का उज्जवल जीवन

सेठ गोविन्ददास की तीन जिल्द की जीवनी पढ़कर आनन्द हुआ। गोविन्ददास जी अपने जीवन में अपने जमाने का प्रतिनिधित्व करते हैं। स्वराज्यसेवक और साहित्य सेवक दोनों दृष्टि से गोविन्ददास जी का जीवन उज्ज्वल है। राजा के पौत्र, दिवाण बहादुर के पुत्र, सेठ गोविन्ददास

• सेठ गोविन्ददास के व्यक्तित्व एवं साहित्य से साभार

अंग्रेज सरकार के जेल के मेहमान बने, यह तीन पुश्त का इतिहास कांग्रेस के सारे जमाने का इतिहास है। गोविन्ददास जी की स्वराज सेवा और साहित्य सेवा दो में से कौन सी ज्यादा है, कहना मुश्किल होगा। सन् 1942 के आन्दोलन में जब हम सब जेल में थे, गोविन्ददास जी का मुझे विशेष परिचय हुआ। तब मैंने देखा कि वे सचमुच भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि हैं। आत्मविश्वास के साथ उनमें नम्रता है। सिद्धान्तनिष्ठा के साथ साथियों से समझौता करने की तैयारी भी है। वे धन के भूखे नहीं हैं, यश के भूखे हैं। सरकार से मिलने वाली प्रतिष्ठा उन्होंने ठुकरा दी और लोगों से मिलने वाली प्रतिष्ठा के ही वे हमेशा लालायित रहे। हिन्दी का प्रखर पुरस्कार करते हुए हिन्दुस्तानी शैली में लिख भी सकते हैं। कांग्रेस के आदर्शों के प्रति उनकी निष्ठा असाधारण है। सेठ गोविन्ददास जी के नाटकों में उनकी सफलता उनके स्वभाव-चातुर्थ के कारण है। अपने पात्र के साथ वे ऐसे एकरूप हो जाते हैं कि मानों वही पात्र उनको सबसे अधिक प्रिय है। चन्द लोग समाज के दोष दिखाने में निपुण होते हैं। सेठ गोविन्ददास जी में गुण-ग्राहकता विशेष है। त्रिविक्रम स्वरूपिणी उनकी जीवनी पढ़ने से एक अस्तमानजमाने गोविन्ददास जी ने हिन्द और हिन्दी साहित्य की बहुत कुछ सेवा की है, अच्छी और उज्ज्वल सेवा की है। और हमें विश्वास है कि इससे भी विशेष प्रकार की सेवा उनके हाथों होने वाली है। •

काका कालेलकर

कृती व्रती का आत्म-चरित्र

श्री सेठ गोविन्ददास जी उन श्रीमानों में से हैं जिन्होंने तन, मन और धन से देश की सेवा की है। उनका जीवन भी उसी में लगा रहा है। राजकुमारों की भाँति सुख में उनका लालन-पालन हुआ है। फिर भी देश के लिए उन्होंने साहस से और हर्ष पूर्वक दुःख सहे हैं। हमारे बड़े-बड़े नेताओं के सम्पर्क में वे रहे और स्वाधीनता के संग्राम में कभी पश्चात् पद नहीं हुये। ऐसे कृती व्रती पुरूष का आत्म-चरित्र महत्वपूर्ण और प्रेरणाप्रद होगा, इसका कहना ही क्या !

वे जन्मजात साहित्यकार भी हैं, बहुत से नाटक उन्होंने लिखे हैं, काव्य और उपन्यास भी। उनकी लेखनी भी उन्हीं के समान अक्लान्त है। हिन्दी में सदा के लिए उनका स्थान सुरक्षित है। वाणी के साथ कर्म का सहयोग उनमें सोने में सुगंध के समान जान पड़ता है।

उनका यह ग्रन्थ अपनी अलग ही विशेषता रखता है। ग्रन्थ निःसंदेह पठनीय और अपने समय का एक दर्पण भी है। •

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

अनासक निर्लिप्त दृष्टि

यह 'आत्म-निरीक्षण' एक ओर जहाँ आपके बहुमूल्य व्यक्तित्व के विकास की कहानी बताता है वहाँ राष्ट्र के संघर्षशील जीवन और उत्तरोत्तर जटिल होने वाली राष्ट्रीय समस्याओं की अनेक गुत्थियों पर भी प्रकाश डाल रहा है। नाटक के विकास की अवस्थाओं के नामों के इन खण्डों का नामकरण करके अपने जीवन रूपी रंगमंच का एक बहुत ही सुन्दर संकेत दिया है। अभिनेता सब कुछ रंगमंच पर करता है किन्तु लिप्त किसी में नहीं होता। जीवन के प्रति यह जो अनासक्त निर्लिप्त दृष्टि है वह इस 'आत्म-निरीक्षण' में सर्वत्र दिखाई देती है। नाटककार इसमें स्वयं कुशल अभिनेता बन गया है। •

हजारीप्रसाद द्विवेदी

कर्म और ज्ञान का शुद्ध दर्पण

प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति शीर्षक से तीन भागों में सम्पन्न 'आत्म-निरीक्षण' या आत्मकथा प्राप्त हुई। इसकी सीधी, सरल भाषा, शैली, तथ्यात्मक सामग्री, समसायिक व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण, राष्ट्रीय और सामाजिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में आत्म-विकास की कहानी- इन गुणों से मण्डित यह श्रेष्ठ ग्रन्थ स्वागत के योग्य है। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि आपने परिश्रम और मानसिक एकाग्रता से अपने जीवन के साठ वर्षों की गाथा को

साहित्यिक चोला पहना दिया है। यह ऐसा शुद्ध दर्पण है जिसमें कर्म और ज्ञान के अट्टहास और तपश्चरण का आपका दीर्घ सत्र प्रीतिबिम्बित है। •

वासुदेव शरण अग्रवाल

बहुमुखी प्रतिभा के साहित्य सर्जक

सेठ जी ने राष्ट्रसेवा के लिए जो त्याग किया है, उससे सभी लोग अच्छी तरह परिचित हैं। उनके जैसे सम्पन्न परिवार के व्यक्ति के लिए आज से पैंतीस-छत्तीस वर्ष पहले गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में कूदने का मतलब था अपनी सम्पत्ति और समृद्धि की पूर्णाहुति दे देना और अंग्रेजों का कोपभाजन बनना जिनके हाथ में उस समय संपूर्ण सत्ता थी। आजादी की लड़ाई में सेठ जी ने बड़ी निष्ठा और लगन से हिस्सा लिया और अपने मार्ग से कभी हटे नहीं। सेठ जी जिस काम को उठाते हैं उसे पूरा किये बिना कभी नहीं छोड़ते।

उन्होंने देश के अनेक रचनात्मक कार्यों में तन-मन-धन से भाग लिया है। जिनमें प्रमुख है- गौ-सेवा और भू-दान यज्ञ।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह इतिहास में अमर रहेगा। साथ ही वे साहित्य सृष्टा भी हैं। साहित्य-सृजन में उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने साहित्य के सभी रूपों को अपने योगदान से समृद्ध किया है। एक सच्चे गांधीवादी की तरह सेठ जी का साहित्य हमें शान्ति और प्रेम का संदेश देता रहेगा है। •

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद

हिन्दी साहित्य और राष्ट्रभाषा हिन्दी के सेवक

सेठ गोविन्ददास मेरे पुराने मित्र और साथी हैं। तीस वर्ष के अधिक हो गए जब से हमारा साथ कांग्रेस के और देश के कामों में रहा है। आजादी की लड़ाई में हमेशा यह आगे रहे। हिन्दी-साहित्य की इन्होंने बड़ी सेवा की है और नाम हासिल किया है। आजकल राष्ट्रभाषा हिन्दी को बढ़ाने में इन्होंने बहुत मदद की। •

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

असाधारण स्फूर्ति

गोविन्ददास जी के ईश्वर ने साहित्यिक कार्य के लिए असाधारण स्फूर्ति, आशुकविता और ललित हास्य आदि रसों को पहचानने की विवेकनी बुद्धि तथा उन रसों का नाटकों में उद्भावना करने की विशेष शक्ति दी है। इनसे हिन्दी साहित्य की परिष्कृत संपत्ति में वृद्धि होगी। •

डॉ. भगवानदास

आत्म-कथा साहित्य में एक अनुपम वृद्धि

'आत्म-निरीक्षण' के तीनों भाग मिले। पूरा पढ़ गया हूँ। हिन्दी के आत्म कथा-साहित्य में यह एक अनुपम वृद्धि है। आदि से अन्त तक ध्यान खिंचता रहा। एक तो आपका उदात्त जीवन, फिर वर्णन का मनोहर ढंग। आत्म-कथा लिखने में जिन आदर्शों को आपने अपनाया, उनका पूरा निर्वाह किया। •

रामवृक्ष बेनीपुरी

कुछ स्मरणीय पल : सेठ गोविन्ददास

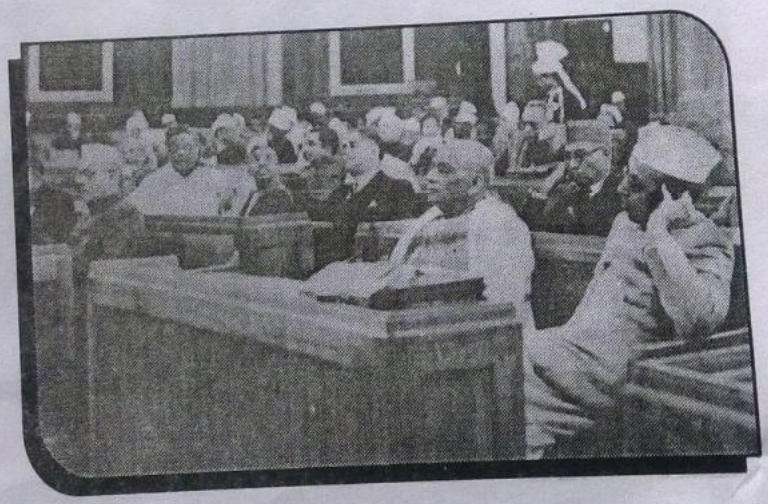

विधानसभा में
सेठ गोविन्ददास।

त्रिपुरी कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष के रूप में। पं. जवाहरलाल नेहरू और श्री श्रीनिवास आयंगर के साथ सेठ गोविन्ददास।

डॉ. राधाकृष्णन के साथ
सेठ गोविन्ददास
किसी कार्य पर चर्चा करते
दिखाई दे रहे हैं।

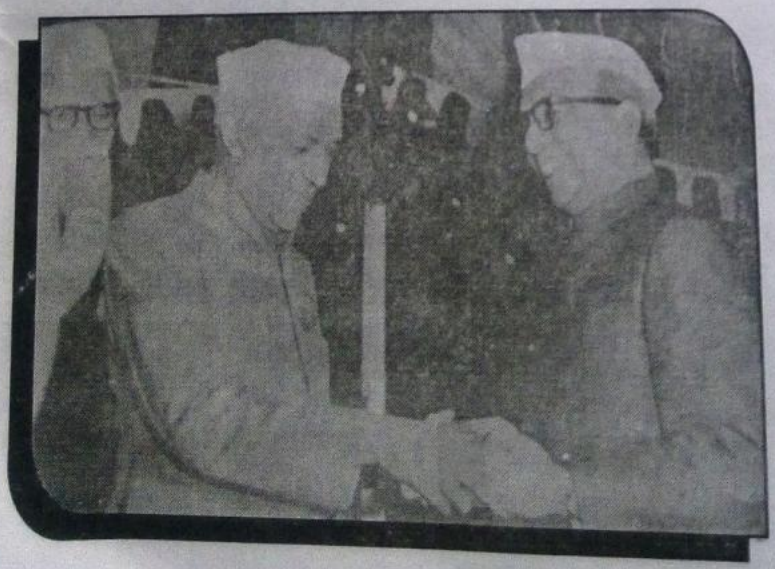

हीरक जयन्ती के अवसर पर
दिल्ली में पं. जवाहरलाल नेहरू
अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट कर रहे हैं।

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से 'पद्भूषण' की सनद प्राप्त करते हुए।

राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद लोकसभा की अध्यक्षता की शपथ दिला रहे हैं।